18th January 2024

ओ३म्

Fortnightly per copy Rs. 12/--

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Telephone : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

आर्य समाज मूर्ति भंजक नहीं, मूर्ति पूजा से हानियों को दर्शाता है

जो परमात्मा को जानता है वह मानता भी है

लेकिन जो केवल मानता ही है व परमात्मा को नहीं जानता

मूर्ति पूजा से हानियाँ

एक बात स्पष्ट है कि मूर्ति पूजा की प्रथा नहीं है । हमारे पूर्व प्रधानमन्त्री स्व. श्री पं. जवाहरलाल नेहरू जी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखा है :-

"यह एक मनोरंजक बात है कि मूर्ति पूजा भारत में यूनान से आई । वैदिक धर्म हर प्रकार की मूर्ति तथा प्रतिमा पूजा का विरोधी था । वैदिक काल में देव मूर्तियों के किसी प्रकार के मन्दिर नहीं थे । बाद के सम्प्रदायों में कुछ-कुछ मूर्ति पूजा के चिन्ह पाए जाते हैं । इस पर भी यह बात पूरे जोर के साथ कही जा सकती है कि मूर्ति पूजा का बहुत व्यापक प्रभाव नहीं था । आरम्भ का बौद्धमत भी इसका घोर विरोधी था और बुद्ध की मूर्ति बनाने की मना ही के बारे में विशेष आदेश थे । यूनानी मूर्ति कला का असर अफगानिस्तान और सरहदी प्रान्त के चारों तरफ अधिक था और धीरे-धीरे वह भारत में प्रवेश कर गया । किन्तु फिर भी आरम्भ में बुद्ध की मूर्तियाँ न बनाकर यूनान के देवताओं जैसी बुद्ध से पहले बौद्ध अवतार की मूर्ति बनाई गई । और बाद में बुद्ध की मूर्ति भी बनाई जाने लगी । हिन्दू धर्म के कुछ सम्प्रदायों ने भी उनकी नकल की, किन्तु वैदिक धर्म इससे प्रभावित नहीं हुआ । फारसी और उर्दू में मूर्ति के लिए जो शब्द बुत प्रयोग में आता है, वह बुद्ध का ही अपभ्रंश है" । हिन्दू धर्म के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायाएं में मतभेद होते हुए भी एक बात पर सब सहमत है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और सब धर्मों का आदि स्त्रोत है । आज हम भगवान् राम और कृष्ण की मूर्तियाँ ईश्वर के समान पूजते हैं । उनके जीवन-चरित्रों में कहीं भी इस बात का वर्णन नहीं मिलता कि वह किसी देवता की मूर्ति की पूजा करते थे, अपितु वह तो सन्ध्या यज्ञादि धर्म करके अपना जीवन सफल बनाते थे । फिर न जाने हम इस नए ज़माने का समर्थन करके उनके अनुयायी कैसे कहला सकते हैं । मूर्ति पूजा के पक्ष अथवा विरोध में कुछ न कहते हुए हम आपके सामने वह हानियाँ उपस्थित करते हैं जो मूर्ति पूजा के कारण हमें उठानी पड़ती है ।

मूर्ति पूजा का मन कभी एकाग्र नहीं हो सकता । आप कहेंगे यह कैसे मूर्ति पजकों का एक भाग जो सत्यार्थ प्रकाश के प्रभाव से यह मानने लग गया है कि परमात्मा की मूर्ति नहीं बन सकती अवश्य, किन्तु मन को एकाग्र करने के लिए किसी निशाने की आवश्यकता होती है । परमात्मा तो दिखाई नहीं देते, अतः मूर्ति के द्वारा हम मन के एकाग्र करने का अभ्यास कर सकते हैं । किन्तु इस युक्ति में कोई जान नहीं है । हमारा मन कभी उसके सुनहरी मुकुट की ओर जाता है, कभी उसके गोटा किनारी वाले कपड़ों की ओर लपकता है, कभी उसके कानों के कुण्डलों को निहारता है और कभी आँखें के काजल को देखता है । कभी उसके किसी अंग को देखकर कारीगर की प्रशंसा करता है और कभी उसके दूसरे अंग को देखकर कारीगर की निन्दा करता है । और मन्दिर के शंख और घड़ियाल कभी मन को लगने भी नहीं देते हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि मूर्ति के कारण मन स्थिर हनो के स्थान पर उसकी चंचलता बढ़ती है । सांख्य दर्शन की कहना है, **'ध्यानं निर्विषयं मनः'** ध्यान का एकमात्र साधन यही है कि मन विषय रहित हो । जहाँ पाँचों ज्ञान इन्द्रियों के विषय कान का विषय शब्द, आँख का विषय रूप, त्वचा का विषय स्पर्श, वाणी का विषय रस तथा नाक का विषय गन्ध विद्यमान है, वहाँ ध्यान कैसे लग सकता है और मूर्ति के द्वारातो न पाँचों इन्द्रियों का पोषण होता है, कठोपनिषद् का ऋषि परमात्मा की निर्विषय बताता है । इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने गीता में मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में करके आसन पर बैठकर आत्मा शुद्ध करने का उपदेश दिया है । अतः यह सिद्ध हुआ कि जब तक मन का सम्बन्ध विषयों के साथ है वह ईश्वर में कदापि नहीं लग सकता और मूर्ति मन को

-शेष पृ. १८ पर

सुख और शान्ति

-डॉ. मुन्शीराम शर्मा

अनादि-निधना नित्य वाणी सर्ग के प्रारम्भ में आकाश के साथ ही उत्पन्न होती है। इस वाणी का मूल रूप ओ३म् है, जिसे प्रणव और अक्षर भी कहा जाता है। ओ३म् अव्यय होता हुआ भी त्रिमात्रिक है। अ, उ, म् तीनों से एक ओर समस्त वर्ण माता की सृष्टि होती है, जो वाङ्मय के रूप में विस्तार पाती है, तो दूसरी ओर उससे जगत् के आविर्भाव, स्थिति और तिरोभाव का भी ज्ञान होता है। भू र्भुवः स्वः नाम की तीन महाव्याहृतियाँ क्रमशः अ. उ और म् की ही प्रतिरूप हैं। त्रिलोकी के भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक प्राकृतिक जगत् के तीन भाग हैं, तो आध्यात्मिक जगत् में भी इन्हीं के समानान्तर तीन धाम हैं,जो अज्ञान और राग द्वेष से हटकर आनन्द की स्थिति तक का निर्देश करते हैं, इन्हीं के साथ प्रकाश का भी सम्बन्ध है, जो महर्षि यास्क के शब्दों में अग्नि विद्युत् और सूर्य का वाचक है, निखिल ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त रूप शरीर है। इसमें भी हमें इसी त्रिलोकी के दर्शन होते हैं। बाह्योन्मुख इन्द्रियों का प्रसार एक लोक है। अन्तर्मुक अन्तःकरण अथवा मन दूसरा लोक है और बुद्धि के साथ आनन्दमय कोष तीसरा लोक है। मानव मात्र का कर्तव्य इन्हीं तीनों लोकों की स्थिति को सम्भालना है।

बाह्योन्मुख इन्द्रियों का प्रसार सुख की कामना करता है। साधारणतः हमें भूख प्यास लगती है, जिससे हम व्याकुल हो जाते हैं और उस व्याकुलता को दूर करने के लिए अन्न और जलको ग्रहण करने का यत्न करते हैं। शरीर के क्षीण होते हुए अवश्य इनके द्वारा पुनः स्वस्थ हो जाते हैं। अन्न और जल के साथ निद्रा भी थके हुए शरीर को स्वस्थ बनाने में सहायता करती है। हमारा यह व्यापार जीवन-पर्यन्त चलता रहता है, परन्तु प्रयत्न के उपरान्त भी शरीर का क्षीण होना दूर नहीं होता। बुढ़ापा आकर घेर लेता है और शरीर को जीर्ण शीर्ण करने लगता है। बुढ़ापे के साथ ही मृत्यु एक दिन आकर शरीर को दबोच लेती है और इन्द्रियों के समस्त व्यापार बन्द हो जाते हैं। कोई कितना ही उपचार करे, अमूल्य औषधियों तथा पुष्टिकारक पदार्थों के सेवन द्वारा भी न वह बुढ़ापे से बच सकता है और न मृत्यु से। तो हम ऐसी परिस्थिति में सुख प्राप्ति के लिए क्या कर सकते हैं ? सुख का अर्थ इन्द्रियों की अच्छी स्थिति है, फिर वे चाहे बाहरी इन्द्रियाँ हों और चाहे आन्तरिक। बाह्येन्द्रियों द्वारा जो सुख भोगे जाते हैं, उनके सम्बन्ध में यदि हमारा दृष्टिकोण भोग्य पदार्थों की ओर न रहकर केवल तृप्ति की ओर रहे, तो भोग कामना दुःख नहीं दे सकेगी। हलुआ पूड़ी खाने के समय यदि हमारा ध्यान केवल इसी भाव पर केन्द्रित रहे कि इनके द्वारा मेरी भूख शान्त होती है और मैं काम करने के योग्य बनता हूँ, तो भाव दृष्टि से बाह्य पदार्थ आकर्षक नहीं रहते। उनका सौन्दर्य, उनके द्वारा उत्पन्न तृप्ति में है; उनके अपने बाह्य आकार में नहीं। समस्त भोगों के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है।

आन्तरिक इन्द्रियों में मन की प्रधानता है। मानसिक क्लेशों में शोक और भय प्रधान हैं। शोक किसी व्यतीत हुए इष्ट-नाश का होता है और भय भविष्य में होने वाली किसी हानि का। शोक और भय के सम्बन्ध में क्लेशकारक जात केवल इतनी है कि उनका चिन्तन मन को अपनी और खींच लेता है और मन विगत तथा अनागत इष्ट-हानि के साथ अपने को तद्रूप कर लेता है। यदि हम मन के इस दृष्टिकोण को ऐसा परिवर्तित कर दें कि मन उनमें न फँसे, उनके साथ तद्रूप न हो, तो हमें किसी प्रकार का क्लेश नहीं होगा। **मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः** । बन्धन और मोक्ष दोनों का ही कारण मन है। यदि वह बाह्य पदार्थों की आसक्ति में तथा उनसे उत्पन्न हानि और लाभ में फँस गया, तो बन्धन और उसका परिणाम दुःख दोनों ही प्राप्त होंगे। और, यदि मन इनमें न फँसा, केवल अनासक्त भाव से द्रष्टा बना रहा, तो मोक्ष का कारण बनेगा। मन की स्वस्थता ही सुख है। उसका अस्वास्थ्य दुःख है। कभी कभी हम मिथ्या दुःख और सुख की कल्पना से भी विचलित हो उठते हैं। वास्तविक बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियों का स्वास्थ्य ही है। प्रचुर, धन अनेक सेवक और प्रभूत पार्थिव सामग्री के होते हुए भी यदि इन्द्रियाँ स्वस्थ नहीं है, और रोग के कीटाणुओं से आक्रान्त हैं, तो वास्तविक सुख स्वप्न के समान ही है। जो कुछ मैं खाता हूँ, यदि उसे पचा नहीं सकता, जो कुछ मैं पढ़ता हूँ, यदि उसे आत्मसात् नहीं कर सकता, तो वह मेरा काया हुआ और पढ़ा हुआ दोनों ही व्यर्थ हैं। इसी प्रकार विपुल भोग विलास की सामग्री के रहते हुए भी यदि मैं उसका उपयोग नहीं कर सकता, तो उससे सुख की उपलब्धि कैसे हो सकती है। अतः सच्चा सुख इन्द्रियों के स्वास्थ्य के साथ उनकी क्षीणता को दूर करने के लिए भोग्य पदार्थों की आवश्यकता है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस अवस्था को हमारे यहाँ अभ्युदय की संज्ञा प्रदान की गई है।

सुख के पश्चात् से परे आध्यात्मिक जगत् की वस्तु है। परम आत्म-तत्व ही परम शान्त है। वही एकमात्र ऐसी सत्ता

-शेष पृ. २० पर

वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता

आर्य जगत पं. सातवलेकर जी से भलीभांति परिचित है। उनका जन्म महाराष्ट्र - सावंतवाडी के कोलगांव में के फरवरी १९-१८६७ में हुआ। उन्हें सौ से अधिक आयु प्राप्त हुई। उन्होंने अपना अधिकांश जीवन वेदाध्ययन तथा वेदभाष्य प्रकाशन में बिताया। १९०७ में उन्होने दो लेख मराठी में लिखे वैदिक प्रार्थना और वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता लिखे। मार्च १९०८ (समर्थ प्रेस-कोठहापुर) में वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता यह लिख छपा। ब्रिटीश शासन की दृष्टि इस छपे हुए लेख पर पड़ी। लेख के सभी अंक जप्त किये गये। हैदराबाद के निवास में, उन्हे हैदराबाद छोडने के लिए बाध्य किया गया। गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय हरिद्वार में कार्यरत रहते समय उनपर वारंट निकाल गया। उन्हें पकडा गया। कोल्हापुर में मुकदमा दायकर उन्हें कारागृह की शिक्षा सुनायी गयी।

श्री पु. पां. गोखले ने अपने ग्रन्थ (मराठी) पं. वेदव्यास सातवलेकर में इस मूल लेख को स्थान दिया है। उन्हें यह लेख लोकमान्य तिलक द्वारा स्थापित - केसरी संस्था के ग्रन्थपाल और इतिहास संशोधक श्री दि.वी. काले से प्राप्त हुआ। उसी लेख का संशिप्त हिन्दी-अनुवाद यह प्रस्तु है।

जब कभी शत्रू किसी पर आक्रमण करने लगे, कष्ट देने लगे, अन्याय करने लगे, तब हाथ पर हाथ घरे प्रतिकार न करते हुए शत्रू के आक्रमण, कष्ट, अन्याय को सहन करने की सलाह-यह भीरुता ही मानी जायेगी। इस तरह की भीरुता मनुष्य को धर्म से दूर करने वाली होगी, साथ ही वह आत्मघात की खायी में दकेलनेवाली भी होगी।

अपने जाज्वल्य प्राचीन संस्कृति की ओर दृष्टि डाले तो हमें वैदिक सिद्धान्तों की तेजस्विता दृष्टिगोचर होगी। वेदों के कई मंत्र हैं, जिनमें आदर्श, वीर, पुरुषार्थी, प्रजावत्सल राजा के लक्षणों की अभिव्यक्ति है। साथ ही स्वाथी, अधार्मिक, नास्तिक, अन्यायी राजा की बात की गयी है। ऐसे राजा को पदच्युत करने के लिए वैदिक ऋषि ईश्वर से प्रार्थना न करते हुए, स्वयंसिद्ध हो शस्त्र हाथ में लिए अकर्मण्य राजा को सिंहासन विहीन किया करते थे। स्वराज्य छीनकर पराधीनता के नारकीय जीवन भोगने के लिए बाहय करने वाले शत्रू को परास्त कर पुनः स्वराज्य की स्थापना करने का विदुषी विदुला का अपने पुत्र को उपदेश, वैदिक आदर्श सम्मुख रखकर महर्षि वेदव्यास का लिखा हुआ-वैदिक साहित्य, यदि हम समझने का प्रयास करे तो प्राचीन इतिहास की गरिमा के दर्शन होंगे। ऋषि वसिष्ट ने श्री रामचन्द्र को उपदेश किया था - कर्मण्यता, साहस, धीरज, बल, बुद्दि और पराक्रम ये सदगुण जिन व्याकीयों में है, उन व्यकियों के लिए तीन लोकों में अप्राप्त ऐसा कुछ नही है। ऋषिबर वसिष्ठ के इस उपदेश में आत्म विश्वासी आदर्श राजा की संकल्पना निहित है। श्री कृष्ण की भगवद्गीता वैदिक सिद्धान्तों का निचोड है। श्रीकृष्ण का कुरुक्षेत्र की युद्दभूमि में अर्जुन को दिया हुआ उपदेश-भीरूता त्याग कर, अधर्म, असत्य के प्रति युद्ध करने का उपदेश रहा है। शत्रु वे भले ही अनंत क्यो नहो उनसे भिडने के लिए संदेव तत्पर रहना चाहिए। यह गीता का उपदेश है। वेद कहते हैं

उतिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतर जना रक्षांस्थामित्राननु धावन।।

उठो, तैयार हो जाओं अपनी पताका लिए शत्रुओं पर टूट पडो, उन्हे परास्त करो। अथ युद्धभूमि में विजय प्राया मर ही लौटे। भगवान स्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं

युद्ध भूमि में विजय प्राप्त कर के ही लौटे। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते है - युद्धभुमि में यदी मृत्यु आई तो उसे स्वर्ग की प्राप्ती ही होगी और यदी युद्धभुमि मे विजय प्राप्त होती है तो सृष्टि का राज्य पाए होगा। युद्ध भूमि मे मृत्यू और विजय दोनो ही महत्व के है राष्ट्र उन्नति के लिए समर्पण आवश्यक है जिससे सुख समृद्धि के महाद्वारा खुल जाते है इसलिए नित्य पुरुषार्थि बने रहे, परिस्थिति प्रतिकूल क्यो न हो। अथर्व वेद के नई ऐसे मंत्र हैं जिनमें शत्रुओं को समूल नष्ट करने की आज्ञा है। सहस्त्र कुपणा शेता ममित्री सेना समरे बधनाम।

विविद्धा कक जागृता।।

(अथर्व ११।१२।२५)

शत्रुओं के हृदय फरे, उनके प्राण निकले

(अथर्व ११।९।२१)

शुद्ध भूमि में हर तरह से शत्रुओं को जर्जर करो (अथर्व ११।१०।२४)

शत्र को ना की बलवती इच्छा व्यक्त करने वाले कई मंत्र है

स्वयं की रक्षा स्वयं करें, स्वावलम्बी बने, स्वयं को अपमानित न होने दे, स्वयं की उन्नति करें, यह मनुष्य स्वभाव धर्म है। सर्वतः आत्मानं गोपा यीत इस श्रुति में स्वयं की रक्षा प्रधान रुप से वर्णित है। प्राचीन ऋषि भुनियों की मान्यता थी कि आततायी कों के प्रतिकार में, आनतादिका वध भी होजाता है, तो वह वध पाप नही। जब पाप ही नही है तो प्रायश्चित कैसा?

अग्नि दो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्ध ना यह।
क्षेत्रदारा पहरी च षडे ते आत तथिन

- विष्णुस्त्रीत

विशुनं चैव राजसु (कात्यायनः)

उद्यतानां तु पापा नां हन्तुर्दोषों न विद्यते

(कात्यायनः)

शस्त्रं द्विजाति भिर्ग्राह्यं धर्मों यत्रो परुध्यते (कात्यायन)

आत ताथिन मायान्तं हन्या देवा विचारयन्।
नात तायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन।।

(मनु।।)

किसी अनजाने को अग्नि में ढकेल कर जला देना, विष देकर किसी का घात करना, सम्पत्ति का अपहरण करना, देशद्रोह करना, राजा को चुगुल खोर बनाना ये सभी आततायिका के कुकर्म है। ऐसे कुकर्मी आततायिका नाश करना, व्यक्ति समाज, राष्ट्र को उन्नत करना है। मनु, कात्यायन की स्मृतियों में राष्ट्र की तेजस्विता ही दृष्टिगोचर होती है।

वर्तमान में, शत्रओं को नष्ट करने की अर्थर्व ११।१०। आज्ञा का केवल अवलोकन विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है अपितु वैदिक प्रार्थना की तेजास्विता अपनाने की नितान्त आवश्यकता है। वैदिक आदर्श मनुष्य को कर्म करने के लिए प्रेरित करते हैं

आ ब्रहमन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्रे राज्ञयः शूरS इषव्योSतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वा नाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामेनः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नSओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।।

अपने राष्ट्र में ब्रह्मज्ञानी हो, ज्ञानी ब्राह्मण हो, महापराक्रमी क्षमिय हो, जो शस्मास्म युक्त हो शत्रुओं से जढे, दूध देनी वाली गोमाता हो, बलपुष्ट बैल हो, गतिमान घोडे हो, सम्पन्न शीण नारियाँ हो, यजमान पुत्र हो, योग्य समय ही वृष्टि हो, धन-हान्य की समृद्धि हो, औषधियाँ हो, अपना राष्ट्र योग क्षेम हो। यह वैदिक राष्ट्रीय प्रार्थना राष्ट की तेजस्वि तो का द्योतक है। मनुष्य की उन्नति के लिए जिन सद्गुणों की आवस्यकता है, राष्ट्र की उन्नति के लिए जिन तत्वों की आवंश्यकता है, उनका विश्वेषण इस प्रार्थना में निहित है। ज्ञान, वीरता, वीर्य, धन-धान्य सम्पदा पर राष्ट्र की उन्नति निर्यर है। यह प्रार्थना राष्ट्र के स्वावलंबन सिद्धात्तों को प्रतिपादित कर ती है।

यो नो द्वेषत् पृथिविक्राथः पृत्थनाद् यो अभि दासान् मनसा यो वधेन। ते नो भूमे रन्धय पूर्व कृत्वरि (अथर्व-१२।१।१४)

अथर्ववेद का पृखि सूत्र कहता है - हे मातृभूमि जो शत्रू अपना द्वेष करता रहेगा, आक्रमण करता रेहेगा, दास्य बनाने पर अडा रहेगा-ऐसे शत्रुको तहस नहस करना-अपना यह प्रथम कर्तव्य होगा।

इस मंत्र से पूर्व-यजुर्वेद का मंत्र तथा अर्थववेदका मंत्र दोनो एक साथ विश्लेशित करने पर यह ज्ञान होता है कि अपने देश की रक्षा तथा उन्नति के लिए कौनसे तत्व आवश्यक है। विद्वान, ब्राम्हण, धैर्यवान, वीर, तेजस्वी क्षत्रिय, उत्तम गोमाता बैल, घोडे, आदर्शनारी धन-धान्य सम्पदा हो। अथर्ववेद वेद के मंत्र में यह आज्ञा है - अपना द्वेष मत्सर करने वाले, आक्रमण करने वाले दास्य बनाने पर तुले हुए अहित चाहने वाले आतातायियों का नाश करें। हम में प्रतिकार करने की शक्ति बढे, जिससे अपने राष्ट्र की ओर कोई भी आंख उठा कर देख ना सके। ज्ञानबिन क्षात्रतेज अर्थहीन है और क्षात्र तेजास्विता बिन ज्ञान भी अर्थहीन है। मनुष्य के लिए विचार शक्ति भी आवश्यक है और बाहुबल भी। दोनो साथ रहें तो राष्ट्र की उन्नति का महाद्वार नित्य खुला रहेगा। इसी उद्देश्य वेदों में दोनों शक्तियों का प्रतिपादन किया गया है।

मदेम शताहिमाः सुविराः (अथर्व-१९।१२।१)

तत् त्वा यामि सुविर्य तद ब्रह्मं पूर्व चित्तये (अथर्व २०।८।३)
भाष्यम् यामि याचामि। पूर्व चित्तये अपूर्ण प्रज्ञानाथ।

वेदों के इस मत्रों में १) विद्वता २) क्षात्रतेज ३) पूर्णायुक्त की प्रबल कामना व्यक्त है। ये कामनाएं जिवन्त राष्ट्र को जन्म देति है। किसी की दासता स्वीकारना ज्ञान का अपव्यय करना ही है, दास्य प्रवृत्ति से क्षात्रतेज का पतन होता है। देश मे व्यसनों की वृद्धि का अर्थ है - देश को व्याधिग्रस्त बनाना। व्याधिग्रस्त देश में तेजस्विता लाने के लिए ज्ञान क्षात्रतेज और पुर्णायुक्त में संगति बिठानी होगी। समाज में यह भावना ध्रढ होनी चाहिये कि अपने लिये जीता नही हुँ, समाज देश की उन्नति के लिए जीता हूँ। मनुष्य के कर्म व्यक्ति निष्ट न होकर समष्टिगत हो, व्यापक हो। इस तरह की वैचारिक शक्ति भावना ही राष्ट्र को सर्वोच्य स्थान पर पहुंचाने की आधार शिला होगी।

उर्जे त्वा बलाय त्वौ-जसे सहसे त्वा
अभिभूयाय त्वा राष्ट्रमृत्याय पर्यूहामि शतशारदाय।।
(अथर्व १९।३७।३)

इस मंत्र मे पदार्थों का केवल नामोल्लेख नही है अपितु सेवन योग्य पदार्थ विश्लेशित किये गये है। अन्नस्वरूप बलवर्धक पदार्थों का सेवन ही आवश्यक है। दारू भांग, अफीम चरस तमाखू जैसे अनेक व्यसन-पदार्थ है जिनके सेवन से मनुष्य की अधोगति होगी ही, देश की भी अधोगति होगी। उत्तम अन्न के सेवन से, व्यायाम करने से शरीर पुष्ट होता है। पुष्ट शरीर मे पुष्ट बुद्धि होती है, जिससे स्वयं का हित भी होता है साथ ही देश का भी। इन आशयों के कई मंत्र वेदों में पाये जाते है। मंत्रों का केवल पठन पाठन आवश्यक न होकर उनके अर्थों को समझ कर उन्हे जो वन का अंग बनाने की आवश्यकता है।

इस मंत्र में (राष्ट्रभृत्याय त्वां पर्यूहमि) मै अच्छे पदार्थों का सेवन करता हूँ। देहशक्ति बढाता हूँ ता कि मै दीर्घायु बन सकूँ। इस मंत्र का आशय यही है कि स्वयं की सुद्दढता देश की सुद्दढ़ता है।

अभि वर्धन्तां पयसा भि राष्ट्रेन वर्धन्ताम्
रय्या सहस्त्रवर्च सेयों स्तायनु पक्षितौ।।
अथर्वा।६।७८।२)

विवाह के बन्धन में बन्धने से पूर्व वधुन्वर को आरोग्य और सुद्दढता के लिए दूध दहीं या शहत दिया जाता है। वैदिक कालीन समाज की मान्यता थी कि राष्ट्र सेवा के लिए अच्छे अन्नादि पदार्थों का सेवन करें।

यह कहना निराधार है कि प्राचीन समय राष्ट्र भावना थी ही नही, राष्ट्र के प्रति स्त्री पुरुषों का दायित्व था ही नही। अपने देश में राष्ट्र संकल्पना, राष्ट्राभिमान आदि नवजागरण विदेशियों की देन है। विदेशियों की यह विचारधारा-दास्य प्रथा को अधिक सुदृढ़ करने वालि है

समे राष्ट्रचं क्षत्रंच पशुनोगश्च ये दधृत।। अथर्व १०?३?१२)

इस मंत्र में ईश्वर से प्रार्थना की गई है - हे ईश्वर हमारे राज्य मे क्षात्रंतेज और ज्ञान हो। ऐसी प्रार्थना को ईश्वर कभी अनदेखा करेगा? परमेश्वर के यहां आत्मधाती की प्रार्थना का कोई महत्व नही है। उत्साही उद्दमी तेजस्वी, पुरुषार्थी कर्मण्यवादी मनुष्य जब ईश्वर से प्रार्थना करता है तब ईश्वर उसकी प्रार्थना जरूर सुनता है। जबतक मनुष्य पुरुषार्थ नही करेगा तबतक वह ईश्वर का भागी नही बनेगा। इसलिए हम सब मनुष्यों को पुरुषार्थी होकर इश्वर का भागी होना चाहिए।

वेदों में उपदेश मात्र उपदेश न होकर वीरश्री उप्तन्न करने वाले है। वैदिक प्रार्थना में तेजस्वीता है। राष्ट्र को उन्नति के पथ पर ले जाने का दिशा दर्शन है। वैदिक धर्म कभी यह कहता नही कि यदी कोई एक गाल पर थप्पड मारे तो उसके सम्मुख दुसरा गाल भी रखो। यदी कोई तो उसकी भीरूता ही होगा ऐसा करे।

और सज्जनों की संरक्षा की सहि। श्रीकृष्ण जी ने अपने मामा कंस का वध तथा कालिया का मर्दन और और दुर्योधन आदी अन्यायी कौरवों को पराजित किया था। इन सभी दुष्ठ प्रकृत्तियों की नाश की प्रेरणा मात्र वैदिक प्रार्थना की तेजस्विता मे ही है।

सत्यं बृहदभुगं दीक्षा तपो ब्रम्ह यहा पृथिवि धारयंति।
सनो भुतस्य भवस्य पत्नी उरुं लोक पृश्विनः कृणोतु।।

स्वाध्याय

पं. बिहारीलाल शास्त्री

सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान्, शास्त्रार्थ महारथी, महोपदेशक पं. बिहारीलाल शास्त्री का जन्म फाल्गुन शुक्ला तृतीया सं. १९४७ वि. को मुरादाबाद जिले केक पागबड़ा ग्राम में हुआ। आपने अमरकोश, लघुकौमुदी का अध्ययन बाल्यकाल में ही कर लिया था। आपने संभल की संस्कृत पाठशाला में अध्यापन किया। पं. वंशीधर पाठक तथा पं. शिवशर्मा से प्रभावित होकर आपने आर्यसमाज के कार्य में रुचि लेनी प्रारम्भ की।

कहां है वह ब्रह्मकुल जिस पर कविवर वाण गर्व करते हुए कहते हैं:-

जगुर्गृहेऽभ्यस्त समस्त वाङ्मयैः
संसारिकैः पंजर वर्तिभिः शुकैः।
निगृह्यमाणाः वटवः पदे पदे
यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः।।

जिनके घरों में ब्रह्मचारी लोग यजुः और साम का मधुर गान करते थे, पर उन्हें सदा शंका बनी रहती थी, क्योंकि पिंजरे में बैठे हुए समस्त वेदों के अभ्यासी तोता मैना तनिक सी अशुद्धि पर पद-पद पर टोक देते थे। पर आज समय पलट गया है, वेद पारायण का महत्व ही जाता रहा है।

वेद ईश्वर वाणी है। इसका एक-एक पद, एक-एक अक्षर हमारे जीवन को पवित्र करने वाला है। आवश्यकता है-इसके स्वाध्याय की। शब्द अपना प्रभाव रखते हैं। मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी तक शब्द पर मुग्ध होते पाये गये हैं। वीणा के शब्द पर हरिण मस्त हो जाता है। पखावज मृदंग पर गजराज झूमने लगते हैं। शब्द जितना ही जिसकी प्रकृति से मिलेगा उतना ही उस पर प्रभाव डालेगा, इसलिये हारमोनियम के रीड जितने ही अधिक मनुष्य की कान की रचना से मिलते होंगे उतने ही प्रिय लगेंगे। इसी प्रकार सितार के तार तथा अन्य बाजों के मिलाने में भी यही रहस्य है। स्वरालाप में भी वही भेद है।

शब्दों का प्रभाव चेतन् जगत् में ही नहीं जड़ जगत् में भी होता है। प्रत्येक शब्द एक विशेष प्रकार का कम्पन पैदा करता है, जिसकी तरंग पृथ्वी के सूक्ष्म जगत् में व्याप्त जाती है।

ग्रामोफोन के रेकार्डों पर शब्दों के चित्र होते हैं, प्रत्येक अक्षर का चित्र भिन्न भिन्न होता है तभी तो सुई की रगड़ से वह सुनाई देता है, इसी प्रकार वेदों में वे ही शब्द चुन कर रखे गये हैं, उन्हीं अक्षरों का प्रयोग किया गया है, जिनका प्रकृति की गतियों से सम्बन्ध है। इसलिये "अग्निमीडेपुरोहितम्" के स्थान पर "वह्निमीले पुरोहितम्" नहीं बोला जा सकता। यद्यपि वह्निमीले शब्द भी अग्नि का पर्याय है। वेद मन्त्रें के उच्चारण से अक्षरों के स्थानों में जो क्रिया होती है, बाह्य अभ्यन्तर जो प्रयत्न होते हैं, उनका पिण्ड देश (शरीर) के सब स्नायुओं पर प्रभाव पड़ता है, इसीलिये बोलने में थकान होती है और पसीना आ जाता है। भिन्न भिन्न शब्द भिन्न भिन्न प्रभाव डालते हैं। ऐसे ही शब्द योगियों के अनुभूत मन्त्रों के पाठ से ही शाब्दिक सूक्ष्म स्नायुओं में जागृति हो सकती है। अतः वेदमन्त्रों के विधिवत् पाठ से स्नायु जाल स्फुटित हो सकता है, कुंडलिनी नाड़ी जाग सकती है। सहस्त्रों परिचक्र विकसित हो सकते हैं। वेद पाठ एक प्रकार का योग है इसके लिए प्रमाण केवल 'शब्द' प्रमाण ही हो सकता है। आप्त पुरुषों ने इसे प्रत्यक्ष किया है। वे ऐसा ही कहते हैं। उन्होंने जिस रस को चखा है हमारे लिए उसका संदेश सुनाया है, उनका कोई स्वार्थ नहीं था, फिर कोई कारण नहीं जो उनकी बात न मानी जाए। न उन्हें कोई मत चलाना था, न गुरु बनना था, फिर उनका यह भी कथन है कि "अभ्यास करके देख लो।"

सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा।

- मुण्डक २।३५

सत्य और तप से आत्मा प्राप्त किया जा सकता है। प्रत्यक्ष करो, स्वयम् ही रस को चखो और जिन्होंने उनकी बताई हुई विधि से काम किया, उन्हें भी रस मिला, फिर संदेह का स्थान कहां?

शब्द अर्थ दोनों ही आवश्यक है। जड़ पर शब्द प्रभाव डालता है, चेतन पर अर्थ। अतः स्वाध्याय सार्थक होना चाहिए। साथ ही श्रद्धा और सदाचार सहित स्वाध्याय करना जीवन को पवित्र करता है। शब्द के साथ मनोयोग होने से शब्द की शक्ति अधिक हो जायगी। दूषित मन, दूषित प्रभाव डालेगा, और निर्मल मन शब्द को अधिक प्रभावित कर देगा। यही कारण है कि यज्ञ कराने वाले ऋत्विग और पुरोहित जितने अधिक तपस्वी होंगे उतना ही प्रभाव फल पर पड़ेगा। शब्द के साथ मनोयोग तथा शुद्ध आचार भी अवश्य चाहिए।

"आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः"

यदि वेदों के स्वाध्याय में इस ग्रन्थ से कुछ भी प्रोत्साहन मिला तो मैं अपने श्रम को सफल

सदाचारी बनो

सोतों को जगाने वाला आर्यसमाज आज सो रहा है। आर्यसमाज ने संसार के उपकार तथा देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरों में वेदों के नाद को बजाने का महान् भार अपने ऊपर लिया हुआ है। सेन्टपाल के विश्वविख्यात गिर्जाघर में वेद मन्त्रों को गाना कोई सरल बात नहीं है। मन्दिरों मस्जिदों पर ओ३म् की दिव्य पताका को फहराना शहीदों का ही काम है। आर्यसमाज में सदाचारी, झूठ फरेब से घृणा करने वाले, मांस सेवन, मद्यपान, रिश्वत आदि कुकर्मों से छूटने और नित्य कर्मों को करने वाले और त्यागी ऋषि भक्त वीर ही कहाँ हैं। बाल ब्रह्मचारी दयानन्द का सन्देश सदाचारी भिक्षुओं के महाभिनिष्क्रमण के बिना कभी नहीं फैल सकता है।

आर्यसमाज के उप-नियमों में सदाचार सुनहरे अक्षरों में लिखा गया है, परन्तु संख्या के पीछे पड़ कर हम लोगों ने उन नियमों को ढीला कर दिया है। फिर चर्च कैसे उन्नत हो सकता है? क्या कभी जर्जर नाव से कोई नदी को पार कर सकता है। आज समाज में सदाचार का स्थान धन और पदों ने ले लिया है। वेद की पुस्तकें अलमारियों में बन्द पड़ी-पड़ी सन्ध्या कर रही हैं। परन्तु उनको पूछने वाला आज कौन है? कहां तो शास्त्रों ने एक सत्यनिष्ठ हुतात्मा संन्यासी को लाखों मनुष्य से अधिक प्रामाणिक बताया था और कहां Majority और Minority के झगड़ों ने आर्यसमाज को खोखला कर दिया है। आज प्रजातन्त्र का युग है। परन्तु हमें प्राचीन ऋषियों का प्रजातन्त्र चाहिए, जिसमें सदाचारी और ब्राह्मणों का प्राधान्य हो।

- आचार्य रामदेव

(तृतीय सार्वदेशिक आर्य महासम्मेल अजमेर का अध्यक्षीय भाषण, अक्तूबर १९३३)

योग के अधिकारी कौन?

वर्तमान समय में योग का टी.वी. पर निरन्तर प्रचार होने से तथा समाज में शिविरें का आयोजन होने से, एलोपैथी की दवाइयों के रिएक्सन के भय से योग के प्रति रूचि बढ़ रही है, दवाई लेना छोड़ देने से रोग पूर्ववत् प्रहार करने लगता है। भोजन के बाद कैप्सूल्स का नास्ता करने आदि के कारण संसार में ऐलौपैथी के प्रति रूचि कम हुई है। इसके विपरीत ३ वर्ष पहले की अपेक्षा प्रातः जागना, भ्रमण करना, आसन, व्यायाम करना, प्राणायाम करना, घर से बाहर निकलकर पार्क में या योग केन्द्र में जाना, आंवले रस का प्रयोग करना, प्रातः लोकी-करेला आदि का जूस पीना नर-नारियों को अच्छा लगने लगा है। दिन में भोजन का संयम करना, आयुर्वैदिक औषधियों का सेवन करना आदि का प्रयोग सर्वत्र अधिक बढ़ता जा रहा है।

उक्त सभी साधनोपायों से शारीरिक स्वस्थता का स्तर बढ़ा है। योग में रुचि बढ़ी है। कुछ वर्ष पहले गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में योग से एम.ए. दो वर्ष का कोर्स प्रारम्भ किया। साथ ही एक वर्ष तथा ६ मास के डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए गये। प्रारम्भ में योग के प्रति रूचि अधिक नहीं देखी जाती थी किन्तु इस वर्ष गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के योग विभाग के अधिकारियों में विशेषकर लड़कियों की प्रयोगात्मक (प्रेक्टिकल) परीक्षा का सेन्टर पातंजल योगधाम आर्यनगर, हरिद्वार में रखा। उस समय देखा गया कि युवतियों की संख्या ४० से भी अधिक थी। आसन-प्राणायाम, जल नेति, सूत्रनेति आदि हठयोग में प्रचलित क्रियाओं का परीक्षण हो रहा था। परीक्षण के समय मैं भी देख रहा था। जल नेति की क्रिया सभी नहीं कर पा रहे थे। उस समय योग विभाग के निर्देशक डॉ. ईश्वर भारद्वाज जी कहने लगे, कि 'कुछ तो सीखेंगी'। उस समय मुझे अनुभव हुआ कि बीमारी नियन्त्रित करने के लिए, स्वस्थ रहने के लिए, या कहीं योग निर्देशक की नौकरी करने के लिए तो यह कोर्स, डिप्लोमा आदि उपयोगी हो सकते हैं। क्योंकि गर्भवती महिलाएं भी परीक्षा देने के वास्तविक में अन्तरंग योग के अधिकारी सभी नहीं हो सकते। महर्षि पंतजलि ने योग की परिभाषा 'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' में चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही योग कहा है। प्रस्तुत सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि व्यास ने चित्त की पांच अवस्थाऐं (पांच भूमियां) बताई हैं। १) क्षिप्त २) मूढ ३) विक्षिप्त ४) एकाग्र ५) निरुद्ध। इन चित्त की भूमियों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि आन्तरिक (अन्तरंग) योग के भी सभी अधिकारी नहीं है। चित्त की सम्भावित सभी भूमियों की व्याख्या प्रस्तुत है-

१) मूढावस्था - मनुष्य के चित्त की सबसे निम्नकोटि की अवस्था है। इस अवस्था में तमोगुण प्रधान होता है, रज तथा सत्व दबे हुए गौण रूप से रहते हैं। यह अवस्था शरीर में भारीपन, आलस्य प्रमाद के कारण आती है। इनके प्रभाव से कामवृत्ति, क्रोध, लोभ एवं मोह का अधिक उदय या बढ़ना होता है। जब चित्त की ऐसी अवस्था होती है, तब मनुष्य की प्रवृत्ति अज्ञान, अधर्म, राग और अनैश्वर्य (विद्या, धन-यश आदि की प्राप्ति न करने की) होती है। यह अवस्था नीच कर्म, नीच स्वभाव वाले सामान्य मनुष्यों की होती है।

२) क्षिप्तावस्था- इसमें रजोगुण की प्रधानता होती है, तम और सत्त्व दबे हुए गौण रूप से रहते हैं। इसके कारण राग-द्वेषादि होते हैं। इस अवस्था में धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-अज्ञान, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य की प्रवृत्ति होती है। तात्पर्य है कि जब तमोगुण सत्त्वगुण को दबा लेता है, तब अधर्म अज्ञानादि में और जब सत्त्वगण, तमोगुण को दबा लेता है, तब धर्म, ज्ञानादि में प्रवृत्ति होती है। यह अवस्था साधारण सांसारिक मनुष्यों की है।

३) विक्षिप्तावस्था - इस अवस्था में सत्त्वगुण प्रधान हाता है, रज और तम दबे हुए गौण रूप में रहते हैं। निष्काम कर्म करने वाले और राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि को छोड़ने वालों की उत्पन्न होती है। इस अवस्था में सत्त्वगुण किसी मात्रा में बना रहता है, इस कारण मनुष्य की प्रवृत्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य में होती है। परन्तु रजोगुण चित्त को विक्षप्त करता रहता है। ऐसी अवस्था ऊँचे मनुष्यों तथा जिज्ञासुओं की है। ये तीनों अवस्थाएँ चित्त की अपनी स्वाभाविक नहीं हैं, अतः इस अवस्था वाले योग के विशेषाधिकारी नहीं हैं, क्योंकि बाहर के विषयों के गुणों से चित्त पर उनका प्रभाव पड़ता रहता है। अतः यही विक्षिप्त अवस्था है।

४) एकाग्रावस्था - जब एक ही विषय में एक समान वृत्तियों का प्रवाह चित्त में निरन्तर बना रहे, तब उसको एकाग्रता कहते हैं। यह चित्त की स्वाभाविक अवस्था है, अर्थात् जब चित्त में बाह्यविषयों के रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव न रहे, तब चित्त निर्मल चमकते हुए सफेद चट्टान के समान स्वच्छ होता है। उस समय उसमें परमाणुओं से लेकर महत्तत्व (बुद्धि) पर्यन्त (ग्राह्य) करने योग्य (ग्रहण) ग्रहण किए हुए और ग्रहीता विषयों का यथार्थ साक्षात् हो सकता है। इसी की अन्तिम स्थिति विवेकख्याति है। एकाग्रता को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में प्रकृति के सर्व कार्यों (गुणों के परिणामों) का पूर्णतया साक्षात् हो जाता है।

५) निरुद्धावस्था - जब विवेक ख्याति द्वारा चित्त और पुरुष के भेद का साक्षात्कार हो जाता है, तब उस ख्याति (ज्ञान) से भी पर वैराग्य के संस्कार मात्र शेष रहते हैं। निरोधावस्था में किसी प्रकार की भी वृत्ति न रहने के कारण कोई पदार्थ भी जानने में नहीं आता, तथा अविद्या आदि पांचों क्लेश सहित कर्माशय रूप जन्मादि के बीज नहीं रहते। इसलिए इसको असम्प्रज्ञात तथा निर्बीज समाधि भी कहते हैं। पाठकवृन्द उक्त वृत्तियों के वर्णन से आप जान सकते हैं कि चित्त भूमियों का योगाभ्यास करने से ही परिवर्तन होता है। अन्तरंग का अभ्यास किए बिना तथा यम-नियम का पालन करने से व्यवहारिक शुद्धि किए बिना, मूढ़ावस्था तथा क्षिप्तावस्था ही प्रायः सांसारिक नर-नारियों की चित्तवृत्ति बनी रहती है। अतः जब तक भोजन की शुद्धि, व्यवहारिक शुद्धि तथा योगाभ्यास से चित्त-मन-बुद्धि की शुद्धि नहीं करेंगे, तब योगाभ्यास के द्वारा धारणा, ध्यान, और समाधि की अवस्था कैसे प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ हमारा यह कथन नहीं कि कोई योग का अधिकारी नहीं बन सकता। किन्तु हमारा सुझाव है कि जो भी साधक-साधिकाएँ इस मार्ग के पथिक बनना चाहें, उन्हें सामान्य जीवन से ऊपर उठकर योगमय भोजन-भजन-भाव एवं भक्ति बनानी होगी, तभी योग्य बन सकते हैं। आओं हम सभी योगप्रेमी बनें, और अपना जीवन सुधारें।

COMMON HUMAN FUTURE

A Freedom System

Freedom, the protection of individual human rights premised on the autonomy and dignity of the individual person, it a multi dimensional concept that lies at the very heart of democracy. We have seen the many ways in which the several branches of the Earth Federation government work together to ensure peace, prosperity and justice. The same is true of freedom. The Earth Federation system as a whole ensures and undergirds freedom through dozens of features working together. It understands that freedom requires health, education and sufficiency of resources. Extreme poverty is itself a denial of freedom. Political freedom must necessarily be complimented by economic and social freedom.

Article 12 of the *Earth Constitution* specifies 18 items articularing a series of political rights and freedoms. It even includes seven items that begin with the word "freedom" - "freedom of thought and conscience, speech, press, writing, etc.; freedom of assembly, association, etc.; freedom to vote and camaign; freedom of religion or no religion; freedom for political beliefs or no political beliefs; and freedom for investigation, research and reporting. Article 13 also includes five items that begin with the words "free" or "freedom"- freedom of choice in work or profession; free public education and equal opportunities; free public health services and medical care; freedom of self-determination for dissenters or minorities; freedom for change of residence anywhere on Earth. The *Earth Constitution* addresses these multiple dimensions of human freedom (see Martin 2010b).

Article 12 calls all the rights that it specifies "inalienable" and states that "it shall be mandatory for the World Parliament, the World executive and all organs and agencies of the World Government to honor, implement and enforce these rights. All persons whose rights have been violated "have full recourse through the World Ombudsmus, the Enforcement System and the World Courts". Ultimately, however, freedom is most fundamentally assued through the establishment of a *global community* under the *Earth Constitution* dedicated to human development and the actualization of human potential. No longer will people be enslaved to multinational corporation, banking cartels, or national security state domination. These impediments will be brought into line by the global founded community of rights and responsibilities deriving from legislation empowering individuals from the ground up.

Aware that the greatest danger to freedom historically has been government itself, especially the Executive Branch of government in control of police and military, the framers of the *Constitution* separated the poice from the Executive branch, as we have sen and abolished the military altogether (beginning with the second operative stage of the Earth Federation). The Executive Branch of the Federation that administers the day to day operations of many government agencies is run by a presidium of five persons, one from each continental division of the planet. The Executive has no power to declare a state of emergency and suspend the *Constitution,* and it hs no power to refuse to spend the budget allocated to it by the World Parliament (Article 6.6).

The World Police and Attorneys General, we have seen, are a separate agency resonsible directly to Parliament (representing the people of Earth). The police possess ony weapons necessary to apprehend individuals and like all government officials, can be removed fro ause. The World Ombudsmus, is an independent agency of government responsible to the World Parliament that can investigate and indict the police for violations of human rights. The *Constitution* provides a comprehensive system of checks and balances directed toward protecting freedom and democracy.

Article 13 of the *Earth Constitution* presents and additional 19 items articulating a series of human rights that are often referred to as "second generaton rights" and "third generation rights". The rights elaborated in Article 12 consitute the traditional political freedoms deriving from the 18th century democratic revolutions; freedom of speech, assembly, press, religion, etc. The conception of second generation rights developed through the early 20th century and were famously expressed, for example, in the U.N. Universal Declaration of Human Rights of 1948.

These include the rights to decent wages, healthcare, social security, education, etc. They are predicated on the understanding that a supportive *social framework* is a necessary foundation for personal freedom and dignity. These are

elaborated in Article 13 of the *Earth Constitution*. However, the *Constitution* understands that even these are insufficient for true freedom. The positive fullness of freedom can only be realized on Earth when peple are also guaranteed the "third generation" rights to world peace and protection of the global environment. The *Constitution* takes freedom to a higher level than any previous historical form.

We have seen that founding principle of the *Earth Constitution* is unity in diversity, a principle that the Federation will promote throughout the government as well as in media, education and law. The second "broad function' of the Earth Federation specified in Article 1 of the *Constitution* states that it must "protect universal human rights, including life, liberty, security, democracy and equal opportunities in life." The entire system of the *Constitution* is built around this and the other five braoad functions specified in Article 1, the first of which (Article 1.1) is world peace, the second of which (1.2) is freedom and the protection of human rights and the fifth of which is "to protect the environment and the ecological fabric of life." The *Constitution* is specifically designed to enhance human flourishing and freedom throughout its many dimensions.

Major impediments to human freedom and flourishing endemic to the present world disorder are removed and prevented from recurring by the integrated functions of the Earth Federation under the *Constitution*. For example, there will be no more national security state, world militarism, authoritarian regimes, rogue militarized terror groups, corporate violations of he dignity of employees, extremes of poverty and deprivation, lack of literacy and education, or lack of adequate health care. Scholars sometimes speak of the defense of first generration political rights as "negative freedom" - the removal of impediments to individual self-determination.

However, the *Constitution* will also enhance the "positive freedom" of actualization within an empowering community premised on unity in diversity. The supporting matrix of a community of rights and responsibilities premised as well on second and third generation rights provides the framework for the creative actualization of our individual and collective human potential. The protection of "life, security and equal opportunities" on Earth, institutionalized throught a global community of freedom (as specified in Article 1) will vastly empower the people of Earth. Freedom will no longer merely be a "freedom from" but will become the positive fullness of "freedom for." The *Earth Constitution* estabishes a dynamic and powerful freedom system.

A Sustainability System

Environmental destruction (like war, poverty, injustice, and denial of freedom) is a direct consequence of our present global political and economic system. If companies have to consider the bottom line in a competitive situation where they must make a certain margin of profit or go out of business, then the incentive to *externalize* costs into the air, water and soil to the detriment of the planetary ecosystem and future generations is tremendous. Genuine sustainability can only be achieved when the common good and the welfare of future generations are factored into the economic equation. Sustainability means that the resources taken from the Earth are either replace fully (for example, lumber used in moderation can be replaced though replanting forests) or used sparingly until ways can be found to substitute artificial resources for essential natural resources (Daly 1996)

The *Earth Constitution* contains dozens of references to "the environment" and the "ecology" of our planet, indicating that a major premise of the Earth Federation will be environmental sustainability. The *Constitution* mundializes those natural resources that are vital to the well-being of humanity and that are limited in quantity or non-renewable (Article 4). Hence, they are taken out of the hands of giant orporate monopolies who today exploit them for the private profit of a few at the expense of most of humanity and future generations. The Provisional World Parliament has taken steps to enable this consitutional mandate, for example, by passing the Water Act at its Eight Session. Multinational corporations have bought up water rights in India and elsewhere and used their "right to private property" to blackmail ordinary citizens who need water (see Shiva 2002).

In his book *When Corporations Rule the World* (1995), former Harvard Business School professor, David Korten, chronicles the devastation of our natural resources as well as the environment by multinational corporations based in the imperial centers of capital. Natural resources are essential for human well-being of all the Earth's citizens as well as future generations. The Provisional World Parliament created the World Oceans and Seabeds Authority to supervise the vast riches of the oceans for the welfare of humanity, oceans corporations without any democratic governmental supervision.

With the vast power placed in human hands by engines, electricity, specialized machines and computers, the ecosystems of the Earth began to be destroyed at a rate far beyond the ability of nature to heal and repair damages caused by human interference. The technoogical revolutions of the 18th and 19th centuries continued into the electronic and digital revolutions of the 20th and 21st centurries - placing such power in human hands that human activity in its present forms may well destroy the life-support systems of the entire planet and collapse the fabric of life to the point where higher forms of life can no longer survive upon the Earth. The forests of the world, for example, provide the plantary ecosystem with much of the oxygen that supports all aerobic forms of life. They bind carbondioxide that is exhaled by most living creatures and produced by all forms of comustion. They moderate the climate and provide habitats for most of the vast bio-diversity of the Earth; they draw fresh water from the ocean coasts into the interior of continents. Yet the forests of the Earth are disappearing at the rate of an area one half the size of California each year.

In addition to forests, agricultural soils of the Earth are rapidly disppearing. Unsustainable agricultural practices are rapidly depleting topsoils of the planet to the point where vast areas have become unsuitable for agriculture and have been converted to grazing lands. Yet overgrazing worldwide is turning even these areas on every continent into desert wasteland, places that cannot be used to support most life. Runoff from the use of pesticides is poisoning water supplies and ecosystems. Billions of tons of topsoil are lost each year to erosion because of these unsustainable agricultural practices.

Regarding fresh water, the over-pumping of aquifers and overuse of water is dropping water tables worldwide, causing water crises and shortages in many areas of the world. The cities fresh air supplies. Hundreds of millions of gasoline and internal combustion engines and other sources of air pollution spew polutants into the air. et the atmosphere of the Earth is necessary to support all higher forms of life and is at the heart of the ecosystem of our planet.

These cities also produce immense amounts of polluted water, garbage and trash wastes that are filling and poisoning countrysides, rivers and oceans worldwide. At the same time, the human population countinues to grow at the rate of some 80 million new fresh water, clean air and agricultural and forest resources to support them throughout their life-spans, and every one of whom produces waste materials that are returned to the environment (cf. Caldicott 1992; Renner 1996, Daly 1996; Speth 2004).

The principle of Gaia, the idea that the entire Earth (as it has evolved over its 4.6 billion year existence) forms and encompassing of people. This awareness grows as planetary phenomena signaling the alteration of the entire global ecosystem become widely know. Phenomena such as global warming, melting of the polar ice caps, depletion of the ozone layer, collapsing of entire ocean fisheries, rapid extinction of species on a daily basis, inceased planeary diasters and superstorms and possible inversions of global ocean currents and weather patterns are well understood (Lovelock 1991).

Thoughtful human beings today have understood that human life is inseparable from the web of life on Earth. The have understood that we must alter our economic, social and political practices rapidly to bring human civilization into harmony with the planetary web of life that sustains us. They understand that all development must be sustainable, that it must support human life in the present in ways that do not diminish the life-prospects of future generations. Today, virtually all societies and all nations are living at the expense of future generations, both of humans and other species (Caldicott 1992; Daly 1996; Speth 2004). Actualizaion of our life-prospects diminishes their life-prospects. At the current rate of destruction, it is even possible that we will reduce their life-prospects to zero.

The *Earth Constitution* and the work of the Provisional World Parliament have ben dedicated to addressing these horrific consequences of the present world disorder. This premise of our global, democratically conceived, well-being is behind the Parliament's passage of the World Hydrogen Energy Authority (WLA#10) to spearhead research and conversion to renewable clean energy for the world, the Hydrocarbon Resource Act (WLA #16) to conserve, regulate on behalf of a clean environment and utilize democratically the world's remaining hydrocarbon resources and the Water Act (WLA #30) that recognizes clean water as a right of all persons and takes steps to protect the Earth's diminishing water resources, restore sources of fresh water to the Earth and democratically apportion these resources to all persons on Earth.

Recognizing not only that the global environment is threatened but that it is already seriously damaged (as the *Manifesto of the Earth Federation* demonstrates at

length), the Provisional World Parliament at its Second Session adopted WLA #6 creating the Emergency Earth Rescue Administration (EERA). The task of the EERA is to spearhead the gigantic task of restoring the environment of the Earth once the first operative stage of world government under the *Constitution* has been activated. Millions of trees will need to be planted, major initiatives will be needed to restore diminished agricultural lands and emergency efforts will be required to reclaim sources and conditions for fresh water for the peoples of Earth.

The Parliament also passed WLA #9 creating, within the World Administration of the *Constitution,* a Global Ministry of the Environment to facilitate conversion to sustainability and staff the EERA. Such momentous tasks, absolutely necessary for a decent future for the Earth, can never be accomplished by the fragmented system of nation-states for the U.N. The U.N., which is a mere confederation of sovereign nation-states, has held three global conferences on the destruction of our planetary environment: in Rio de Janeiro, Brazil, in 1992, Johannesburg, South Africa, in 2002 and Copenhagen, Denmark, in 2009. There is common aggreement that these were all complete failures in dealing with our environmental crises.

The Provisional World Parliament has created a network of practical, pragmatic and immediately necessary laws and agencies to deal with the immense problems of global environmental restoration and conversion of sustainability. As we have seen, the very first article of the *Earth Constitution* specifies that the fifth environment and the ecological fabric of life from all sources of damage and to control technological innovations whose effects transcend national boundaries, for the purpose of keeping Earth a safe, healthy and happy home for humanity". Both the *Constitution* and the Parliament are dedicated to creating a world system adequae to this task.

The *Constitution* explicitly required the government of the Earth Federation to protect the ecological fabric of life on Earth, only does the *Constitution* make this a primary mandate of the Earth Federation, but in its second bill of rights (Article 13) makes respect for the Gaia principle a right of the people of Earth themselves and a "directive principle for the world government" to actualize this right. Article 13, numbers 9, 10 and 11 read as follows. People have a right to: "protectionof the natural environment which is common heritage of humanity against pollution, ecological disruption or damage which could imperil life or lower the quality of life" (9); "Conservation of those natural resources of Earth which are limited so that present and future generations may continue to enjoy life on planet Earth" (10); and "assurance for everyone of adequate housing, of adequate nd nutritious food supplies, of safe and adequate water supplies, of pure air with protection of oxygen supplies and the ozone layer and in general for the continuance of an environment which can sustain healthy living for all".

Clearly, here again, the *Constitution* explicitly recognizes the need for human economic, political and social insitutions to conform to ehg Gaia principle (which is the principle of sustainability) protecting the whole of the planetary environment for future generations. The key to a sustainable civilization is not only to promote education concerning the principles of natural ecology. This effort alone is insufficient and will ultimately fail unless the antiecological institutions of the modern world, described above, are also transformed according to the scientific principles of natural ecology.

For this to happen, the entire human community must be joined together through the dynamic of genuine unity in diversity that constitutes a complementary principle of social ecology in human life, uniting all people under nonmilitary democratic world government. Only thus can the Gaia principle become a guiding principle for all human political, ecnomic and social processes. These principles of social ecology are inseparable from the principles of natural ecology. It is necessary to do for humanity what the natural Gaia principle does for nature. The *Constitution for the Federation of Earth* joins the two together to create a truly ecological and sustainable world order.

Conclusion

The *Constitution* and its elaboration through the work of the Provisional World Parliament provide the necessary conditions for a peaceful, prosperous and sustainable world system. Throughout our model, howver, we have assumed the creative input of the human beings with integrity, vision and creative energy who must enliven the system outlined by the *Consti-tution* and the Parliiament. The Earth Federation needs Parliamentarians, Judges, Administrators, Police and Ombudsmen of who are capable of cooperatively working as part of an open ended, democratic learning community informed by the

स्वस्थ जीवन का आधार ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र, योगासन-व्यायाम एवं शुद्ध शाकाहारी भोजन

आज के समय की सबसे बड़ी समस्या मनुष्य का स्वास्थ्य ठीक न रहना है। स्वास्थ्य का सम्बन्ध हमारे सुखों एवं दीर्घायु से है। यदि हम स्वस्थ हैं तो हम सुखी हैं और दीर्घायु हो सकते हैं और यदि स्वस्थ नहीं तो फिर रोग के अनुसार हम दुःखी रहते हुए अस्पतालों के भारी बिलों से त्रस्त रहते हुए, अनेकानेक दुःख भोगते हुए असमय मृत्यु का शिकार हो सकते हैं। अतः मनुष्य को सबसे अधिक यदि किसी बात पर ध्यान देने की आवश्यकता है तो वह है स्वास्थ्य। संबंधी कुद सरल उपायों पर हम आज चर्चा कर रहे हैं जिससे न केवल हमें स्वस्थ जीवन मिलेगा अपितु इससे हमारे इस जन्म के सुखों में वृद्धि होगी और साथ ही हमारा परजन्म भी सुधरेगा। स्वस्थ रहने के लिए पहला आवश्यक उपाय ईश्वर को जानना और उसके अनुरुप भक्ति करना है। ईश्वर भक्ति से मन शान्त रहता है जिससे मनुष्य स्वस्थ रहता है और उसमें रोगोत्पत्ति की सम्भावना कम व न के बराबर रहती है। ईश्वरभक्ति का एक लाभ यह भी होता है कि वह हर स्थिति में प्रायः शान्त व सन्तुष्ट रहता है। ईश्वरभक्त मनुष्य स्वस्थ व अस्वस्थ जीवन को ईश्वर की ही किसी व्यवस्था का परिणाम मानता है जो कि उसके कर्मों से जुड़ी होती है। मनुष्य जब ईश्वर की भक्ति करता है तो स्तुति, प्रार्थना व उपासना करते हुए वह ईश्वर से सुख, शान्ति, निरोग जीवन सहित ज्ञान वृद्धि व सबके सुख की कामना करता है। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी होने से उसकी बात सुनता है और भक्त की पात्रता के अनुसार उसे पूरा भी करता है। ईश्वर भक्ति में किसी प्रकार का कोई धन व्यय नहीं होता परन्तु इससे लाभ सबसे अधिक होता है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार मनुष्य को प्रातः व सन्धि वेला में दो समय ईश्वर की भक्ति करनी चाहिये। महर्षि दयानन्द ने ईश्वर भक्ति को सन्ध्या करना बताया है। इसकी सर्वोत्तम विधि भी सन्ध या के नाम से उन्होंने लिखी है जिससे लाभ उठाया जाना चाहिये। यह आवश्यक है कि सन्ध्या के साथ वेद व वैदिक साहित्य का अध्ययन तथा स्वाध्याय भी किया जाये। स्वाध्याय भी एक प्रकार की सन्ध्या ही होती है। इसमें ईश्वर के गुणों का अध्ययन करने पर हमारे ईश्वर विषयक विचार दृण होते हैं, ज्ञानवृद्धि होती है जिसका लाभ ईश्वर का ध्यान करने में मिलता है। स्वाध्याय करने से ईश्वर व जीवात्मा सहित प्रायः सभी विषयों का आवश्यकता के अनुरूप ज्ञान हो जाता है जो जीवन में बहुत लाभ पहुंचाता है। स्वाध्याय के लिए वेद सहित उपनिषद, दर्शन, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया जाना चाहिये। अन्य भी अनेक ग्रन्थ हैं जिनसे ईश्वरोपासना एवं जीवन में बहुत लाभ मिलता है।

स्वस्थ जीवन के लिए दैनिक अग्निहोत्र करना भी लाभप्रद होता है। अग्निहोत्र को देवयज्ञ व हवन भी कहते हैं। यह पांच महायज्ञों में मनुष्य का दूसरा प्रमुख कर्तव्य है। इसके करने से वायु की शुद्धि सहित जल की शुद्धि होने सहित अनेक आध्यात्मिक लाभ भी होते हैं। अग्निहोत्र में स्तुति, प्रार्थना, उपासना सहित जो अन्य मन्त्र यज्ञाग्नि में आहुति आदि देने के लिए बोले जाते हैं उनसे भी ईश्वर की प्रार्थना व उपासना होती है। आत्मिक ज्ञान बढ़ने के साथ जीवन की उन्नति होती है जिससे मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त होती है। यज्ञ का प्रमुख द्रव्य गोघृत होता है। इसके दहन से वायु में स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाले कीटाणुओं का भी नाश होता है। पर्यावरण प्रदुषण भी नष्ट होता व घटता है। हससे हम रोगों से बचते हैं। इससे हमारे शरीर में गोघृत के सूक्ष्म कणों से मिश्रित शुद्ध वायु प्रवेश करती है जिससे रक्त की शुद्धि होने से अनेक रोग ठीक होते हैं। यज्ञ के समय हम ईश्वर से जो स्वास्थ्य, व्यवसाय, रोगनिवृति, सन्तान के सुन्दर भविष्य व अन्य प्रार्थनायें करते हैं वह भी ईश्वर के सर्वव्यापक होने से सुनी जाती हैं और पूरी की जाती हैं। संक्षेप में यहां इतना ही वर्णन कर रहे हैं। स्वाध्याय करने पर यज्ञ वा अग्निहोत्र का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

मनुष्य का शरीर हाड़-मांस का बना हुआ है। इसे निरोग रखने के लिए आसन व व्यायामों की आवश्यकता है। प्राणायाम भी स्वस्थ शरीर व निरोग जीवन का आधार हैं। प्राचीन काल में रचित अष्टांग योग वा योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने आसन को यम व नियम के बाद तीसरे स्थान पर रखा है। इसका यह अर्थ होता है कि ध्यान व समाधि को सिद्ध करने के लिए पहले यम, नियम व आसनों को सिद्ध करना होगा। यदि यह सिद्ध नहीं होंगे तो ध्यान व समाधि भी सिद्ध

नहीं हो सकती। शायद यही कारण था कि महाभारतकाल व उससे पूर्व हमारे देश के लोग सौ वर्ष से भी अधिक जीवित रहते थे। ऐसा होना उस समय आम बात थी। आज भी यदि हम ऐसा करते हैं तो हम स्वस्थ व निरोग रहते हुए दीर्घायु को प्राप्त कर सकते हैं। योग का प्रचार स्वामी रामदेव जी द्वारा विगत अनेक वर्षों से किया जा रहा है। उनके प्रयासों से आसन व प्राणायाम का विश्व स्तर पर सघन प्रचार हुआ है। आज उनके व प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के प्रयासों से विश्व योग दिवस तक मनायें जाने लगे हैं। योग पूरे विश्व में प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ है जिसका मुख्य कारण इससे होने वाले स्वास्थ्य लाभ व सुखी जीवन को दिया जा सकता है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यज्ञ द्वारा स्वास्थ्य लाभ व सुखी जीवन की पुष्टि हो चुकी है। अतः योगासन व प्राणायाम को भी प्रातः व सायं करने का अभ्यास करना चाहिये। ऐसा करके हम सुखी रह सकते हैं।

स्वास्थ्य में विकार का एक कारण हमारा अभक्ष्य पदार्थों से युक्त व असन्तुलित भोजन भी हुआ करता है। हमें सदैव शुद्ध, पवित्र, शाकाहारी व पौष्टिक भोजन ही करना चाहिये। मांस, अण्डे, मछली, धूम्रपान, असयम भोजन, फास्ट फूड, रसायन युक्त पेय पदार्थ, मदिरा वा शराब आदि से स्वास्थ्य को हानि पहुंचती हैं। दाल, रोटी, हरी तरकारियों से युक्त भोजन, मौसमी फलों सहित गोदुग्ध ा स्वस्थ जीवन का आधार है। बादाम, काजू, किसमिश आदि का सेवन भी करना लाभप्रद होता है। यदि हम समय पर अल्प मात्रा में शाकाहारी भोजन करते हैं तो इससे हमारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा, रोग होंगे नहीं अथवा कम से कम साध्य कोटि के होंगे जिसे आयुर्वेद व योगाभ्यास से ठीक किया जा सकेगा। इस ओर प्रत्येक मनुष्य को ध्यान देना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन भी स्वस्थ जीवन का आधार है। श्री राम, श्री कृष्ण, ऋषि दयानन्द, चाणक्य, आचार्य शंकर आदि सभी ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य की शक्ति से ही वह मेधा बुद्धि को प्राप्त कर सके तथा जीवन में अनेक महत्वपूर्ण व मानवता के उपकार के कार्य कर सके। ब्रह्मचर्य का भी जीवन में ध्यान रखना चाहिये। यह आम मनुष्य के लिए भी साध्य है।

स्वस्थ जीवन धारण करने में दिनचर्या का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। समय पर सोना व समय पर जागना भी मनुष्य को स्वस्थ रखता है। प्रातःकाल भ्रमण करना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है। ऋषि दयानन्द जी का जीवनचरित पढ़ने पर ज्ञात होता है कि वह प्रातः भ्रमण के लिए जाते हैं। बरेली प्रवास के दौरान स्वामी श्रद्धानन्द जी उनके सम्पर्क में आये थे और उन्होंने स्वामी दयानन्द के प्रातः लगभग 3 बजे भ्रमण पर जाने की दिनचर्या का वर्णन किया है। स्वस्थ व सुखी जीवन की प्राप्ति के लिए किसी मनुष्य को किसी के साथ अन्याय व उसका शोषण नहीं करना चाहिये। जितना बन सके परोपकार के कार्य भी करने चाहियें। सज्जन पुरुषों की मित्रता और दुर्जनों से दूरी रखना भी मनुष्य को सुखी रखता है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि मनुष्य को वेद आदि साहित्य के साथ ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, पं. लेखराम आदि के जीवन चरित भी पढ़ने चाहियें। इनसे हम अपनी दिनचर्या का सुधार कर सकते हैं और अनेक उपयोगी जानकारियों भी प्राप्त कर सकते हैं। हम आशा करते हैं कि इन कुछ उपायों पर यदि हम ध्यान देते हैं तो हमें अवश्य लाभ होगा। इसी के साथ इस चर्चा को विराम देते हैं।

dynamics of systems thinking and the principles of holism. We need dedicated people who are willing to beging living from this moment forward according to the ethical and legal principles embodies in the *Earth Constitution.*

Such persons will serve as the sufficient condition for actualizing the unity in diversity of this world system. Such persons in our present historical situation must also serve as the sufficient condition for the ratification and implementation of the *Constitution.* The necessary features of a holistic world system can be described in print. The sufficient conditions for its actualization depend on the love, aspirations, sonscience and intelligence of actual human beings. Within the Earth Federation Movement today, citizens all around the world are actualizing this vision and hve begun living according to the *Earth Constitution* no longer according to the illegitimate and immoral system of warring nation states.

The holism of the new, liberating paradigm discovered by 20th century science was embodies in the *Earth Constitution* by establishing social and economic systems designed to produce the holistic consequences of peace, prosperity, justice, freedom and sustainability. It is this insight that is essential to human liberation. War and poverty are not essential to the human condition but are consequences of the global systems under which we currently struggle. If we establish different systems, different consequences will follow. You as reader are engaging the most important document of the 20th century, which can form the bases for a new and liberating world system in the 21st century.

ऋषि जन्म दिवस

वैदिक जीवन पद्धति को अपनाने करने का संकल्प दिवस

आज ऋषि बोधोत्सव ऋषि जन्म भूमि टंकारा सहित देश देशान्तर में मनाया जा रहा है। आज शिवरात्रि के ही दिन आज से 179 वर्ष पूर्व ऋषि को टंकारा के शिव मन्दिर में शिव की मूर्ति के सम्मुख यह बोध हुआ था कि शिव व अन्य किसी देवता की मूर्ति की पूजा करना मनुष्य के लिए किसी भी प्रकार से लाभप्रद नहीं है। उन्होंने इस बोध के होने पर अपना सारा जीवन ईश्वर के सच्चे स्वरूप के ज्ञान व उसकी उपासना विधि को जानने में लगाया। कालान्तर में उनको सत्य ज्ञान प्राप्त हुआ कि ईश्वर तो सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर अभय, नित्य, पवित्र व सृष्टिकर्ता आदि गुण, कर्म व स्वभाव वाला है। उसी की उपासना हमें महर्षि पतंजलि के योगदर्शन व ऋषि दयानन्द जी द्वारा वेदों के आधार पर रची गई 'सन्ध्या विधि' से करनी चाहिये। ईश्वर के सत्य स्वरूप, मनुष्य के कर्तव्य व ईश्वर की यथार्थ उपासना विधि को जान लेने के बाद उन्होंने अपने वेद, वैदिक शास्त्रों और योग विद्या आदि के ज्ञान से संसार के लोगों को अवगत कराया। उन्होंने मौखिक प्रचार किया और साथ ही वेद प्रचार को स्थायीत्व प्रदान करने के लिए सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदभाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, व्यवहारभानु सहित अनेक ग्रन्थो की रचना की। महर्षि दयानन्द ने वेद ज्ञान सहित इतर जितना भी ज्ञान प्राप्त किया वह सब शिवरात्रि के दिन हुए उस बोध का ही परिणाम था और इसमें शिवरात्रि के बाद घटी दो घटनाओं, बहिन की अचानक हैजे से मृत्यु और चाचा की मृत्यु भी, रहीं जिससे उन्हें संसार से वैराग्य हो गया था।

ऋषि बोधोत्सव का दिन हमें जीवन में एक संकल्प लेने का दिन प्रतीत होता है। संकल्प इस बात का कि हम ऋषि के जीवन चरित का अध्ययन कर अपने जीवन को भी वेद ज्ञान से सुशोभित व सुरभित करेंगे। ईश्वर भक्त बनेंगे और वेद ज्ञान का प्रचार व प्रसार करेंगे जो कि प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। हमें दो सुधार करने हैं प्रथम अपना सुधार। इसके लिए हमें स्वयं को वेदों की शिक्षाओं के अनुरुप विचार एवं आचरण वाला बनाना होगा और द्वितीय हमें यथाशक्ति आर्यसमाज के संगठन के अन्तर्गत संगठित होकर, लोकैषणा का त्याग कर, वैराग्यवान होकर वैदिक विचारधारा का जन जन में प्रचार करना है। दूर दूर तक न सही, अपने आसपास के लोगों को अपने व्यक्तित्व व कृतित्व से तो हम प्रभावित कर ही सकते हैं। चारों वेदों के साक्षात्कृतधर्मा ऋषि महर्षि मनु ने कहा है कि 'वेदखिलो धर्मऽमूलम्' अर्थात् वेदों का ज्ञान व आचरण ही मनुष्य के धर्म का मूल अर्थात् आधार है। वेद ज्ञान से रहित मनुष्य पशु समान होता व हो जाता है। यदि कोई मनुष्य सद्गुणों से विभुषित है और वेदों से उसका सम्पर्क नहीं है, तो यह मानना चाहिये कि वेदों से निकल कर वह गुण उस व्यक्ति तक उसके माता–पिता व आचार्यों के द्वारा व पूर्व जन्म के संस्कारों वा ईश्वर की कृपा से ही पहुंचे हैं। सत्य बोलने और धर्म पर आचरण की शिक्षा का आरम्भ वेद ज्ञान से ही हुआ है। आज यदि वेदानभिज्ञ मनुष्य इसका समर्थन करते हैं तो भले ही उनको इस बात का ज्ञान न हो परन्तु यह शिक्षा उन तक वेदों से ही चलकर पहुंची है, ऐसा जानना व मानना चाहिये। अतः वेदों की सभी मान्यताओं व सिद्धान्तों का प्रचार संसार में होना चाहिये। वेदों के नाम से यदि प्रचार होता है तो इससे लोगों को यह लाभ होगा कि उन्हें वेदों के महत्व का ज्ञान भी होगा और वह अपनी प्रत्येक भ्रान्ति को वेदाध्ययन व वेद की सहायता से दूर कर सकते हैं।

अपने सीमित वेदाध्ययन से हम यह भी अनुभव करते हैं कि जो लोग वेद ज्ञान से दूर हैं वह अनेक प्रकार की भ्रान्तियों से ग्रस्त हैं। हमें यह मनुष्य जीवन हमारे पूर्व जन्मों के सद्कर्मों के आधार पर मिला है। हमारे जीवन के सभी सुख व दुःख हमारे पूर्व व वर्तमान जीवन के कर्मों का ही परिणाम हैं। हमारा परजन्म, मृत्यु के बाद होने वाला जन्म, भी हमारे इस जन्म व पूर्व के अभी न भोगे गये कर्मो के आधार पर ही होगा। अतः हमें अपने कर्मों पर ध्यान देना आवश्यक है। यह कार्य केवल वेदों व ऋषियों के ग्रन्थों के अध्ययन से ही सम्भव हो सकता है। श्रेष्ठ परजन्म के लिए हमें ईश्वरोपासना एवं यज्ञादि कर्मों में रूचि लेनी होगी और पंचमहायज्ञों के सम्पादन में प्रमाद से बचना होगा। इसके लिए ऋषि ग्रन्थों का अध्ययन कर अपने ज्ञान को बढ़ाया जा सकता है। उपनिषद एवं दर्शनों का अध्ययन भी हमारे कर्तव्यों के

बोध में अत्यधिक सहायक होता है। इन सभी ग्रन्थों के अध्ययन से किसी को भी विमुख नहीं होना चाहिये। ऋषि दयानन्द बोध से हमें यह भी प्रेरणा मिलती है कि हमें एकांगी नहीं अपितु सर्वांगीण जीवन व्यतीत करना है। हमें स्वास्थ्य के सभी नियमों का पालन करते हुए स्वस्थ रहते हुए अपनी आयु को बढ़ाना है अर्थात् अपनी आयु को किसी बुरे कर्म से घटाना नहीं है। वेद एवं वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय कर हमें अपने कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करना है एवं उन सभी कर्तव्यों का यथाशक्ति पालन करना है। सभी मनुष्यों को अविद्या के नाश व विद्या की वृद्धि के लिए पुरुषार्थ करना चाहिये। यह बोध भी ऋषि दयानन्द जी ने हमें कराया है। इसका एक अर्थ यह भी है कि हमें अवैदिक वा वेदविरुद्ध विचारों का खण्डन और वेद सम्मत विचारों व मान्यताओं का युक्ति, तर्क व प्रमाणों से मण्डन करना है। हमें मूर्तिपूजा के साथ व्यक्तिपूजा, कब्र पूजा, मृतक लोगों के चित्रों की पूजा आदि का खण्डन करना होगा। ईश्वर के स्थान पर आज लोग अपने अपने गुरूओं की पूजा को ही ईश्वर स्तुति–प्रार्थना–उपासना का पर्याय मानने लगे हैं, उनसे भी लोगों को सावधान करना होगा। इन अंधविश्वासों से देश कमजोर हो रहा है। लोगों का बहुत सा समय इन गुरुओं की शरण में उनका भजन–कीर्तन आदि में व्यर्थ होता है जिससे देश के आगे बढ़ने में रूकावट आती है। ऐसे लोग देशोन्नति में अधिक सहायक नहीं होते हैं। हमने अनुभव किया है कि यूरोप की प्रगति में संगठित ज्ञान विज्ञान के अध्ययन, विचार–विनिमय, गोष्ठी आदि के द्वारा उन्नति का विशेष योगदान है। यह सभी लोग अन्धविश्वासों से प्रायः मुक्त थे। ऐसे ही देशवासी हमारे देश को भी उन्नति के पथ पर ले जा सकते हैं। इसका भी आंकलन कर हमें प्रचार करना चाहिये और लोगों को मिथ्या पूजा व उपासना से हटा कर वेदसम्मत योगविधि व सन्ध्या आदि के द्वारा ईश्वर उपासना का प्रचार करना है।

ऋषि जीवन ने देश को जो ज्ञान व दर्शन दिया है उसके आधार पर वैदिक धर्म संसार का ज्ञान व विज्ञान से युक्त एकमात्र धर्म सिद्ध होता है। वेद प्रचार की न्यूनता ही है कि देश व विश्व में आज भी अज्ञान, मिथ्या मत–मतान्तर, मिथ्यापूजापाठ व इनकी जननी अविद्या विद्यमान है। वेद प्रचार को कैसे अधिकाधिक लोगों तक पहुंचाया जाये इस पर आर्यसमाज व ऋषिभक्तों को विचार करना है। देश में हिन्दुओं की घट रही जनसंख्या व दूसरे मतों की संख्या में वृद्धि भी हमारे लिए विचार व चिन्तन का विषय होनी चाहिये। इसके भविष्य में दुष्परिणामों पर भी हमें विचार करना चाहिये और आवश्यक उपाय करने चाहिये जिससे आर्य हिन्दु समाज अल्पसंख्यक होने से बच सके। अल्पसंख्यक होने का क्या दुष्परिणाम हो सकता है, यह विश्व के विगत एक डेढ़ हजार वर्षों के इतिहास के अध्ययन से जाना जा सकता। अवैदिक पूजा, असंगठन, सामाजिक विषमता आदि का परिणाम ही तो हमने विगत लगभग 1 हाजर वर्षों तक भोगा है जिसमें विधर्मियों की गुलामी, अन्याय व अत्याचार सम्मिलित हैं। हमें लगता है कि हमने इन घटनाओं से कोई शिक्षा नहीं ली है। आज भी हम उन विधर्मियों की पराधीनता व उनसे मिले दुखों के कारणों का ही सेवन कर रहे हैं। अतः ऋषि बोध दिवस पर हमें सभी क्षेत्रों में सावधान होना है।

Study of the *Constitution for the Federation of Earth* repays the student richly. For a model of a future world order emerges that not only transforms the fragmented and outdated paradigms of the present world disorder but shows itself to be entirely practical and imminently possible under the guidelines provided by Articles 17 and 19. The coneptual model presented here and affimed by the Provisional World Parliament at its 12th session in Kolkata, India, in 2010 presents only the highlights of the integrated planetary system initiated by the *Earth Constitution* and the Provisional World Parliament. I hope that the parameters of this model that I have sketched in this document may inspire people to evermore intensive study of the *Earth Consitution* and modeling of the transofrmed world system that it engenders.

As people begin to understand the vision, there is tremendous urgency that they also act on that vision with creativity, integrity and energy. The *Constitution* must be ratified in a founding ratification convention according to the Protocols already developed by the Provisional World Parliament. It converts the present failed world system to peace, prosperity, justice, freedom and sustainability. It replaces the U.N. Charter, with real democratic government keeping the valuable agencies of the U.N. as ministries of the Earth Federation. You are about to read the most important document produced by the 20th century- the document that will provide the foundation stone for the paradigm shift of the 21st century. *Nothing less than the fate of humanity and our precious planet Earth are at stake. We invite your participation. We invite you to a life of "civil obedience".*

वैदिक नित्यकर्म

नित्यकर्मों का आदेश एवं महत्व - मानव का परम लक्ष्य है - मोक्ष प्राप्ति। वैदिक नित्यकर्म मोक्ष प्राप्ति के सोपान हैं। वेदोक्त कर्मों के विधान का उद्देश्य है- मनुष्य का ऐहिक और पारमार्थिक कल्याण करना, मनुष्य को वास्तव में मनुष्य बनाकर उसे मुक्ति प्राप्त कराना।

संसार में प्रत्येक मनुष्य सुख-शान्ति, आरोग्य, समृद्धि और मुक्ति की कामना करता है। इनकी प्राप्ति के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह श्रुति, स्मृति विहित नित्य कर्मों का निष्ठापूर्वक पालन करें। विशेषतः उपासक के लिए तो नित्यकर्मों समयानुसार पालन करना आवश्यक है, क्योंकि ये नित्य कर्म उपासना के सहायक और पूरक कर्म हैं। इनके बिना उपासना की उपयुक्त मनोभूमि और बाह्य वातावरण नहीं बन पाते। जो मनुष्य इनका भली-भाँति अनुष्ठान करते हैं, वे सुख-शांति, आरोग्य, समृद्धि के साथ पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। उनकी धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि हो जाती है।

मनुस्मृति में मनु महाराज ने आदेश दिया है-

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः ।
तद्धि कुर्वन यथा शक्ति प्राप्नोति परमां गतिम।।- मनु. ४।१४

अर्थात- मनुष्य वेदोक्त कर्मों को, जो कि मनुष्यों के लिए विहित हैं, प्रतिदिन आलस्य रहित होकर करे। अपने सामर्थ्य के अनुसार प्रतिदिन उन्हें करने वाला मनुष्य परमगति अर्थात मोक्ष को प्राप्त करता है।

वेदविहित आचरण धर्माचरण के पर्याय हैं और वैदिक नित्यकर्म धर्माचरण के पूरक। यही कारण है कि सबी वेदोक्त कर्म शब्द है? जिसमें संसार की सभी उत्तम बातें समा जाती हैं। धर्म का मार्ग एक ऐसा मार्ग है, जिसमें संसार के सभी अच्छे मार्ग समा जाते हैं। इसी के पालन से मनुष्य- मनुष्य बनता है। मनुर्भव - ऋ१०।५२।६अर्थात- मनुष्य बन

और मनुष्य बनने का सही उपाय है धर्माचरण, अर्थात वेदोक्त कर्मों का पालन। धर्म के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए श्रुति-स्मृतियों ने मनुष्य की दिनचर्या का भी निर्धारण किया है।

१. शौच, २. दन्तधावन, ३. व्यायाम, ४. स्नान, ५. पुनः स्वाध्याय, योगाभ्यास, आदि, ६. दैनिक पञ्चमहायज्ञ- (क) ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्योपासन और स्वाध्याय), (ख) देवयज्ञ (अग्निहोत्र), (ग) पितृयज्ञ, (घ) बलिवैश्वदेवयज्ञ, (च) अतिथि यज्ञ.

७. तत्पश्चात भोजन तथा अन्य कार्य।

रात्रिकालीन दिनचर्या

रात्रि में (दस बजे के लगभग) शयन करें। शयन से पूर्व अपनी शय्यां पर बैठ शिवसंकल्प मन्त्रों से प्रार्थना करने से मन शुद्ध, पवित्र और शांत होता है। स्वपनिकालीन अशांति, बुरे स्वप्नों का आना आदि दूर हो जाते हैं। प्रातः उठते समय सुख-शांति का अनुभव होता है, क्योंकि मनुष्य सोते समय जैसी भावना लेकर सोता है, सोते हुए अचेत मन में वैसी ही भावनाएं सक्रिय होती रहती हैं। इधर-उधर भटकते मन को शिवसंकल्प मन्त्रों द्वारा वश में करके सोने से मन शान्त हो जाता है।

शराब को रोकिये और शिक्षा में नैतिक मूल्यों का

बलात्कार की घटनाओं से व्यापक रोष और सामाजिक संसदीय, प्रशासनिक स्तर पर आगे इसे रोकने के उपायों पर मंथन सराहनीय है। बलात्कारियों को फाँसी देने की माँग संसद से सड़क तक उठ रही है। और तो और स्वयं बलात्कार की घटना का आरोपी भी अपने लिए फाँसी का सज़ा माँग रहा है- उनके परिवार वाले भी कुछ ऐसी ही भाषा बोल रहे हैं। दूसरे जो फाँसी की सज़ा के सिद्धांत रूप से खिलाफ हैं, वे अपाधियों के बंध्याकरण और अथवा आजीवन कारावास की सज़ा का समर्थन कर रहे हैं।

स्वामीजी ने कहा कि बलात्कार जैसे अमानवीय अपराध को रोकने के लिए जहाँ बहुत से उपाय ज़रूरी हैं, वहीं एक महत्वपूर्ण कारगर उपाय है शराब के उत्पादन, वितरण, एवं उपभोग पर पाबंदी के लिए जन चेतना जगाना और उस दिशा में समाज, सरकार था उद्योग जगत को मिलाकर कदम उठाना। क्या स्कूली बच्चों के पाठ्यपुस्तकों में कतिपय कार्टूनों से उद्वेलित हो जाने वाले सांसद एक बार यह भी पूछेंगे कि और अच्छी बातों के साथ हम अपने बच्चों को क्यों नहीं पढ़ाते महात्मा गांधी इसे शरीर और आत्मा दोनों के विरुद्ध अपराध और पाप बताते हैं। फिर पाठ्यपुस्तकों में इस बुराई से बचने-बचाने की सीख क्यों नही है?

क्या हो गया इस देश की महान संस्कृति को कि दुनिया को ब्रह्मचर्य, सदाचार और संयम का पाठ पढ़ाने वाला भारत आज विकास के नाम पर शराब की नदियों में गोते लगा रहा है- सुरा और सुंदरी की अपसंस्कृति का आभूषण पहन इतरा रहा है।

మాంసాహారమును విడిచి - శాఖాహారమును స్వీకరించవలెను అసలు ఎందుకు ?

ఈ సమస్త కష్టకారక పరిస్థితుల మధ్య కూడా "ఆశ" అనే ఒక కిరణం మెరుస్తున్నట్టుగా కనిపిస్తున్నది. ఈ దేశము విదురుడు, చాణక్యుడు, దయచందుడు, రవీద్రానాథ్ ఠాగూర్ మరియు గాంధి యొక్క దేశము. ఇది "ఏకలా చలోరే" ఒక్కడివే నడువు అనే మాటను విశ్వసించును. చెడుకు ప్రారంభము సమూహము నుండి మరియు మంచి కేవలము ఒక్కరితోనే ప్రారంభించబడుతుంది దీనికి చరిత్ర సాక్ష్యము. శాఖాహారి ఆందోళనమును ఒకరు లేక ఇద్దరు వ్యక్తులు ప్రారంభించినా అవి తీవ్రమగును., వ్యాపకమగును, ప్రభావము చూపును మరియు సఫలమగును ఎందుకనగా దానితో విజ్ఞాన మున్నది, ఆధ్యాత్మమున్నది, చికిత్సాశాస్త్రమున్నది, అర్థశాస్త్రమున్నది, నైతికత్వము మరియు మానవత్వమున్నది. ఎప్పుడైతే ఈ దేశము మాంసాహారమనే శాపము నుండి ముక్తిని పొందునో అప్పుడు పశు సంపదలో అనుకున్నంత మాంసా హారమనే శాపము నుండి ముక్తిని పొందునో అప్పుడు పశు సంపదలో అనుకున్నంత వృద్ధి జరుగును మరియు పాలు, పెరుగు, నెయ్యి మొదలైన వాటి నదులు మళ్ళీ ప్రవహించును, ఏ పసి పిల్లలు మరియు ప్రసవించిన ఏ తల్లి కూడా వీటి నుండి వంచితులై ఉండరు. పేదతో ఎంత వంట గ్యాసు, కరంటు మరియు ఫ్యూల్ లభించునంటే గ్యాస్ సిలండర్ కొరకు లైన్ కట్టేపని ఉండదు, కరంటు బిల్లు ఇబ్బంది పెట్టదు, డీజిల్ పెట్రోల్‌ను విదేశాల నుండి తెప్పించే అవసరమూ ఉండదు. స్వదేశీ ఎరువు ఎంత తయారవు తుందంటే రాసాయనిక ఎరువులపై ఆధారపడ నవసరము ఉండదు, వ్యవసాయ భూమి బీడుగా మారకుండా కాపాడబడును, ఏ వందల కోట్ల రూపాయల సబ్సీడీని రాసాయనిక ఎరువుల పరిశ్రమలకు ఇస్తారో అది అంతా మిగిలిపోవును. సేంద్రియ ఎరువులతో ఉత్పన్నమైన ఆరోగ్యవంత మైన అన్నము అనగా బియ్యము, పప్పులు, కూరగాయలు, పాలు, పండ్లు, మేత, నూనె మొదలైనవి లభించితే సమస్త రోగాల నుండి ముక్తి స్వతఃగానే లభించును. పంచగవ్య ములను (ఆవు పాలు, పెరుగు, నెయ్యి, మజ్జిగ మరియు మూత్రము) సేవించడము వలన ఎలోపేథిక్ చికిత్సను విడిచి ఆయుర్వేదమును పునః స్థపించడముచేత మళ్లీ ప్రతీ సంవత్సరము వేల కోట్ల రూపాయల విదేశీ ధనాన్ని కాపాడుకోవచ్చును. పర్యావరణము ప్రదూషణము నుండి ముక్తిని పొందితే గంగా, యమునా, గోదావరి మొదలైన నదులు కూడా స్వచ్ఛముగా, శుద్ధముగా, పవిత్రముగా మారును. మానసిక స్థితి సాత్వికము కావడముచెత అపరాధ మానసిక వృత్తుల గ్రాఫ్ పడిపోవును మరియు ఆధ్యాత్మము బలపడును, మద్యపానముతో ముక్తి లభించును ఎందుకనగా మద్యపానానికి మాంసాహారానికి దగ్గర సంబంధము కలదు.

గోహత్య వలన ఏ సాంప్రదాయిక సుహృత భావము చెడిపోవుచున్నదో, సాంప్రదాయిక అల్లర్లు జరిగే అవకాశమున్నదో అది తనంతట తానే సమాప్తమగును. గోమయముపై ఆధారపడిన లఘు పరిశ్రమలు ఉదా: సబ్బులు, కాగితము, గ్యాస్, ప్లాయి, ఇటుకలు వీటి నిర్మాణము చేత గ్రామీణ ప్రాంతాలలోనే జీవనోపాధి కొరకు కొత్త ఆశలు చిగురిఇచును. దీని వలన నగరాలవైపు గ్రామీణుల వలస ఆగిపోవును. భూకంపాలు, సుడిగాలులు, అకాల దుర్భిక్షము మొదలైన వినాశకారక ప్రాకృతిక ఆపదల నుండి ముక్తి లభించును. పక్క దేశాలలో జరిగే పశువుల దొంగ వ్యాపారము నుండి ముక్తి లభించును. దీని వలన రాజ్యాంగము లేక నీతి పట్ల విశ్వాసము మరియు గౌరవము కూడా పెరుగును. దేశము యొక్క మాంసము, తోలు పరిశ్రమ, రాసాయనిక ఎరువులు, మద్యము, ట్రాక్టరు మొదలైన వాటితో పొందే ధనము నుండి ఏ ఎన్నికల పద్ధతి భ్రష్టుపట్టుచున్నదో అది శుద్ధమగును. ఇదే ఆ ప్రశస్త పథము. దీని వలన భారతదేశము యొక్క ఆర్థిక వ్యవస్థలో కోరుకున్న మార్పులు తీసుకువచ్చి ఈ దేశము మళ్ళీ బంగారు పిట్టగా, స్వర్ణభూమిగా, దేవభూమిగా మారును. భారతదేశంలో వనరుల లోటు లేదుకాని ప్రగతిశాల దృష్టికోణము, రచనాత్మక రీతి నీతుల మరియు సకారాత్మక శక్తి యొక్క లోటు కలదు. ఈ లోటును ఈ దేశము యొక్క ప్రాచీన జీవన మూల్యములను స్వీకరించడము చేతనే దూరము చేయవచ్చును. ఈ దేశము యొక్క ప్రాణము వేదాలలో, ఉపనిషత్తులలో, దర్శనాలలో, స్మృతులలో, రామాయణములో మరియు భగవద్గీతలో ఉండును అందువలన భారతదేశము యొక్క అభివృద్ధి బాట ఈ ప్రాణముల గుండానే మొదలగును. ఆధునిక విజ్ఞానము, చికిత్సా శాస్త్రము, అర్థశాస్త్రము, సమాజ శాస్త్రము మరియు మానవ శాస్త్రము ఈ సత్యాన్ని తెలుపుతున్నది. గొప్ప సంతులు, సంప్రదాయులు ఈ దేశంలో ఏ సామాజిక, సమన్విత సంస్కృతిని సృజించారో అది కూడా ఈ వైపే చూపిస్తున్నది. మీతో ప్రార్థన -

మనము ఎక్కడైతే ఉన్నామో ఒక్కరమే ఉండని లేదా ఏదైనా సంగఠనం, సంస్థానము, సంప్రదాయము లేదా సమూహముతో కూడి ఉన్నాము. స్వహితము, సమాజ హితము, రాష్ట్రహితము మరియు ప్రపంచహితము కొరకు మన ప్రథమ రక్తవ్యము ఏమిటంటే మనము ఏ కారణము చేతనైనా మాంసాహారులమైతే ఆ కారణము యొక్క నిరుపేక్ష చేసుకొనవలెను. రెండవ కర్తవ్యము ఏమిటంటే తన సాంప్ర దాయము లేక జాతిగత సమాజము, సంస్థానము, సంగతనము మాంసాహారమును విడిచి శాఖాహారమును స్వీకరిఇచాలని శ్రద్ధతో నిష్ఠతో ప్రయత్నము చేయవలెను. ఈ కార్యము విఫలమైనా కూడా పరవాలేదు. మూడవ కర్తవ్యము ఏమిటంటే మన స్తరానుగుణంగా ఫేస్‌బుక్, వెబ్‌సాయిట్, ఇంటర్‌నెట్ మొదలగు ఆధునిక సంచార సాధనాల ప్రయోగము శాఖాహార ప్రచారము కొరకు చేయవలెను. మన నాల్గవ కర్తవ్యము ఎలక్ట్రానిక్ మీడియా, సోషల్ మీడియా, ప్రెస్‌మీడియా, ఫిల్మ్ ఇండస్ట్రీ వారిని ఎట్టి పరిటస్థితుల్లోనైనా మాంసాహారానికి ప్రోత్సాహనము ఇవ్వకూడదని మరియు

శాఖాహార ప్రచారములో సహాయకులు కావాలని తయారు చేయాలి. మన ఐదవ కర్తవ్యమేమనగా మన ముందు ఎంత భయంకరమైన కఠిన పరిస్థితులు వచ్చినా మనము ఏ కనిష్ఠ భావముతో శాఖాహారమును ఒక మిషన్ వలె ఒక జీవనపద్ధతివలె ఎల్లప్పుడూ కాపాడవలెను. మన ఆరవ కర్తవ్యమేమిటనగా తన ఆర్థిక సామర్థ్యము సారముగా తమ స్వయముగా లేక ఎవరితోనైనా కలిసి లేక తన సంగఠనము, సంస్థానము నుండి ఈ పుస్తకము యొక్క హిందీ లేక ఇంగ్లీష్, ఉర్దూ, పంజాబీ, బెంగాళీ, గుజరాతీ, మరాఠీ, తమిళము, తెలుగు, కన్నడ, ఉడియా, అస్సామీ మొదలగు భాషలలో అనువాదము లేక ప్రకాశనము చేయించి దీనిని అధికాధిక సంఖ్యలో నిశ్శుల్కము వితరణ చేయవలెను ఇతరులను ఇలా చేయడానకి ప్రేరేపించవలెను. ఈ పుస్తకము యొక్క సారాంశమును కూడా ఒకటి రెండు పేజీల కరపత్రాల వలె ముద్రణ చేయించి పంచవచ్చును. ఈ విధమైన ముద్రిత సామగ్రి యొక్క సూచన మన మిషన్ యొక్క ముఖ్యాలయముకు కూడా పంపవలెను. మన ఏడవ కర్తవ్యము ఏమనగా శాఖాహార విషయాన్ని తీసుకొని వివిధ స్థలాల నుండి సెమినార్‌లు నడిపించాలి, శాఖాహార సమ్మేళనాలను ఏర్పాటు చేయాలి, ప్రచార యాత్రలు తీయవలెను, ముఖ్య మార్గములలో లేక స్థానాలలో పొస్టర్లు, హోర్డింగులు అతికించాలి. ఎందుకనగా మనము మాంసాహారాన్ని విడిపింపజేయాలి అందుకు మన శ్రద్ధ మరియు ప్రచారము మాంసాహారా జనుల క్షేత్రములో నమాజములో, సాంప్రదాయములలో, జాతులలో వారి మాతృభాషలోనే చేయవలెను. ఏ సముదాయ మైతే నిరక్షరాస్యులో అక్కడ ప్రచారము యాత్రల చేత, సమ్మేళనాల చేత, సంగోష్ఠుల చేత చేయవలెను.

శాఖాహారి మిషన్ ఒక సమగ్ర ఆందోళన వలె నడువలెను అందుకు ఒక విశేష సంస్థ దీని శ్రేయస్సును సమకూర్చడం నుండి కాపాడవలెను. ఈ కార్యానికి సంబంధించిన నమస్త సంగఠనములు తమ తమ స్తరానుగుణంగా ఏది సరియైనదో అదే విధంగా చేయవలెను. ఈ కార్యము ధనసంపాదనకో శ్రేయస్సును పొందడానికో లేక ఏదైనా స్వార్థపూర్తి కొరకో కాకుండా నమస్త మానవ కళ్యాణము కొరకు స్వీకరించవలెను. ఈ పని యొక్క ఒకే ఒక్క ఉద్యేశ్యమేమిటంటే నూంసాహారాన్ని విడిపించ వలెను అందుకు ఏదైనా విశేష సాంప్రదాయము యొక్క లేక సముదాయము యొక్క ధార్మిక భావనలు దెబ్బ తినకుండా శ్రద్ధ తీసుకొనవలెను. ఈ పూర్వాగ్రహముతో లేక కోపముతో కాదు. మనము ఈ విషయముపై కూడా శ్రద్ధవహించ వలెను. ఏమిటంటే కేంద్ర ప్రభుత్వములోనో లేక రాష్ట్ర ప్రభుత్వములోనే ఎల్లప్పుడు ఈ విధమైన కుచేష్టలు నిండి ఉండును. అవి మన వ్యక్తిగత హితములను, మన రాజనీతి హితములను మరియు మనకు నచ్చిన ఉద్యోగపతుల హితములు అన్నింటికన్నా గొప్పవని అనుకొని మాంసాహారమును మరియు మద్యపానమును అత్యధికముగా ప్రచలితము చేయడానికి, రాసాయనిక ఎరువుల మరియు ట్రాక్టర్ల ఉపయోగమును ప్రోత్సహించే చెడు నీతులను తయారు చేసి వాటిని క్రియాన్వితము చేసే దిశలో సక్రియులై ఉందురు. ఉదాహరణకు మీరందరు ఫిబ్రవరి, 2013 రెండవ వారంలో 'అమర్ ఉజాలో' మరియు 'దైనిక్ జాగరణ్' మొదలగు పత్రికల్లో ముద్రింపబడిన ఈ సమాచారము తప్పక చదవి ఉండవచ్చు ఏమనగా కేంద్ర ప్రభుత్వము తన స్తరానుగుణంగా గోమాంసమును తినే సలహా ప్రజలకు ఇస్తున్నది. కేంద్ర ప్రభుత్వము యొక్క అల్పసంఖ్యాక మరియు బాల వికాస మంత్రాలయము ఉత్తర్ ప్రదేశ్‌లో అల్పసంఖ్యాక బహుళ క్షేత్రాలలో శరీరంలో ఆక్సీజన్ సంరక్షణకు మరియు రక్తము తయారు కావడానికి ఆకు కూరలతోనే కోడి మాంసము మరియు ఆవు మాంసమును తినుమని సలహా ఇస్తున్నవి, ఈ సలహాను ధైర్యంగా పత్రములను పంచి చేయుచున్నారు. ఎప్పుడైతే హిందూ సంగవనములు దీనికి విరుద్ధంగా గొంతు ఎత్తారో, ప్రదర్శనలు చేసారో, ఈ విషయాన్ని పార్ల మెంటులో లేవనెత్తారో అప్పుడు ఆకరపత్రాలపైన ఆంక్ష విధించారు మరియు ఎవరి దగ్గరైతే ఈ కరపత్రాలు ఉన్నాయో వాటిని ప్రశాసవముకు తిరిగి ఇవ్వమని విజ్ఞప్తి చేశారు. ఈ సంఘటన మవానా (మేరఠ్) క్షేత్రానికి సంబంధించినది మరియు ఈ విషయము అందరికి తెలిసినదే ఉత్తర ప్రదేశ్‌లో గోహత్యకు విరుద్ధ ఆంక్షలు ముందు మండే ఉన్నాయి. ఉత్తరప్రదేశ్ అలహాబాద్ (ప్రయాగరాజ్)లో మహకుంబ మేళా జరుగుతూ ఉండేను అక్కడ హిందూ సంత మహాత్ములు మరియు శ్రద్ధాలు జనులు కోట్ల సంఖ్యలో ఉపస్థితులై ఉండెను. ఇటువంటి సమయమున ఈ కుచేష్టలు ప్రాంతానికి ఎంత కష్టదాయకమైయ్యేవి. ఈ విధంగా ఈ అభిమాన్ యొక్క సంయోజకులు అర్థము చేసుకోలేరా. ఇటువంటి ఉద్దండ పూరితమైన వనులను సాధారణంగా ప్రభుత్వము దగ్గర ఉన్న ఉద్దండ తత్వములు తెలిసి చేస్తూ చేయిస్తూ ఉంటా. "నండే హోయా మండే ఖూబ్ భావో అండే" అనే విషయాని టీ.వీ. చానల్ల ద్వారా లేక పత్రపత్రికల ద్వారా ప్రచారాన్ని కూడా ఈ దుష్ట శక్తుల చేతనే జరిగినది. ఢిల్లీలో ఆయోజింప బడిన రాష్ట్ర మండల ఆటల నందర్భమున విదేశీ ఆటగాళ్లకు, అధికారులకు మరియు అతిథులకు ప్రభుత్వము ద్వారా గోమాంసమును వడ్డించే సిగ్గుమాలిన ఏర్పాట్ల సమాచారము ఎప్పుడైతే ఢిల్లీలో 5 జనవరి 2010 నాడు హిందుస్థాన్ టాయిమ్స్‌లో ముద్రితమైతే పైన పేర్కొన్న వాక్యము యొక్క లేఖకుడు దీనికి విరుద్ధంగా ఆందోళన చేసెను. ఢిల్లీ ముఖ్యమంత్రి శ్రీమతి శీలా దీక్షిత గారిచే 23 జనవరి 2010న మరియు మహామహిమ్ రాష్ట్రపతి శ్రీమతి ప్రతిభా దేవీ సింగ్ పాటిల్‌చే 24 జనవరి 2010న కలిసి రెండు ప్రతినిధి మండలములు తమ విజ్ఞాపనమును ఇచ్చి ప్రభుత్వమును ఈ విదంగా మేల్కొల్పెను. 1994లో చెప్పిన విధంగా చట్ట పరంగా ఢిల్లీలో ఆవులను చంపి, మాంసమును చేసి, తన దగ్గర పెట్టుకోవడము వడ్డించడము లేక బయటినుండి తెప్పించడము నేరము. ఈ చట్టాన్ని ఉల్లంఘించినట్లయితే ఒక సంవత్సరము జైలు శిక్షవడును. దీని పరిణామమే రాష్ట్ర మండల ఆటలలో గోమాంనమును వడ్డించకూడదనే ఆదేశమును రాష్ట్ర పండల ఆటల ఆయోజన సమితి అధ్యక్షుడు సురేశ్ కల్‌మాడే చే ఇవ్వబడినది. ఇది 23 జులై సమాచార పత్రములలో కూడా ముద్రితమైనది. అందువలననే 25 జులై 2010న జంతర్‌మంతర్‌లో అనుకున్న విశాల ప్రదర్శనను మేము ఆపివేసినాము. ఢిల్లీ నగర పాలికలో పక్ష ప్రతిపక్షములు రెండూ కూడా గోమాంసమును వడ్డించే ఈ యోజనను గట్టిగా నిందిచారు. దేశమంతటా కోళ్ళపెంపకము, పందుల పెంపకము, కుందేళ్ళ పెంపకము, చేపల పెంపకము మొదలైన వ్యవసాయ ములను అగ్గువ చేయడము, ఎక్కువ కాలములోను

ఇప్పించడము ఈ దుష్టశక్తుల చేతనే వ్యాపించబడినవి. దీనిచే ఎక్కడైతే మద్యము అమ్మకాలు పెరిగినవో అక్కడ అపరాధముల గ్రాస్ కూడా పెరిగినది. ఇటువంటి దుష్ట శక్తులపై దృష్టిని పెట్టి వారి దుష్ట కోరికలను నఫలము రాకుండా మనము కూడా సావధానముగా, సక్రియముగా మరియు కటిబద్ధులుగా ఉండవలెను.

నిజానికి మన రాజ్యాంగ నిర్మాతలచే రాజ్యాంగాన్ని తయారుచేసే సమయమున ఒక పెద్ద పొరపాటు అనుచ్ఛేదము - 19లో జరిగినది. ఈ అనుచ్ఛేదము యొక్క ఒకటవ ఖండమున వాక్ స్వాతంత్ర్యము, సమ్మేళన స్వాతంత్ర్యము, సంగఠన స్వాతంత్ర్యము, భారతదేశములో తిరగడము, నివసించడము మరియు వ్యాపారము యొక్క స్వాతంత్ర్యము ప్రస్తావింపబడెను. దీనిలో ఏదైనాకూడా వృత్తి, ఉపజీవిక, వ్యాపారము లేక వ్యవసాయము చేసే ఈ వెసులుబాట పేరుతో వధశాలలను నడిపించడము, మద్యము దుకాణములు, బీడీ-సిగరేటు, పాన్, గుట్కా మొదలైన వాటి ఫ్యాక్టరీలు తెరవడము, మాంసము యొక్క వ్యర్థాలతో ఉత్పాదకత తెలువడము, వైశ్యావృత్తిని వ్యవసాయమని మరియు నవుంనకులకు లైసెన్సులు ఇచ్చి మూర్ఖత్వమును పెంచడము మొదలగు అసామాజిక కార్యములు పెరగడానికి మార్గము ఈ అనుచ్ఛేదముతో చూపడుచున్నది. ఏ సమలైంగికత్వము చట్టపరంగా దండనీయ అపరాధముగా ఉండెనో ఇప్పుడు అదే అవియంత్రిత స్వేచ్ఛతో అపరాధము కాదు. వివాహము కాకుండానే స్త్రీ పురుషులు ఒకే ఇంట్లో ఉంటూ వైవాహిక జీవనమును గడపడము లేక పురుషుడు పురుషునితో మరియు స్త్రీ స్త్రీతో వివాహము చేసుకోవడము కూడా ఇప్పుడు చట్ట బద్ధమే అయినది. అందువలన ఈ అనుచ్ఛేదములో సంశోధన చేయడము అనగా వృత్తి, ఉపజీవిక, వ్యాపారము చేత సమాజములో క్రూరత్వము, హింస, వైమనస్వయు, సాంప్రదాయ కత్వము, అశ్లీలత్వము పెరగడము, ప్రకృతి సమతుల్యత చెడిపోవడము లేక పర్యావరణము కలషితము కావడము మరియు ప్రాకృతిక ఆపదల పృష్ఠభూమి తయారు కావడము వ్యక్తి యొక్క శారీరిక, మానసిక, ఆత్మిక స్వాస్థ్యమునకు నష్టము చేకూర్చడము, ఏదైనా విశేష సముదాయము యొక్క ఆస్థ మరియు భావనలను కించ పరచడము ఇటువంటి పనులను సంపూర్ణముగా నిలిపివేయవలెను. నిజానికి ఒకటవ ఖండములో ఈయబడిన వెసులుబాటును ఇదే అనుచ్ఛేదము యొక్క 2, 3, 4, 5, 6, 7వ ఖండములలో ఈ స్వాతంత్ర్యము యొక్క హరణము రాజ్యముచే చేయబడునని విధానమైతే ఉన్నది కాని లోక సమ్మతము యొక్క వివరణ ప్రస్తావించలేదు. రెండవది భారతదేశములే ఏ ప్రాంతములోనైనా నివసించే లేక వ్యాపారము చేసే అధికారము ధారా-370 మరియు 369 ప్రతిబంధించి నవి దీనిని కొన్ని విశిష్ట ప్రాంతములు అనుసరిస్తున్నవి, వలసదారులు ఎంత మంచివారైనా లేక ఉద్యములైనా సరే మరియు వ్యాపారము ఎంత జనకళ్యాణకారమై ఉన్నా సరే. కాశ్మీర్‌లో భారత ప్రభుత్వము ప్రాంతీయ ప్రభుత్వము యొక్క అనుమతి లేకుండా పోస్టాఫీసు తెరవాలన్నా వారికి దీని గురించి భూమి లభించదు. నాగాలైండ్‌లో ఒకవేళ మనము ఏదైనా స్కూలు లేదా ధార్మిక సంగఠనము తయారు చేయలన్నా అక్కడ చేయ లేము. నిజానికి ఇది ఎటువంటి స్వాతంత్ర్యము లేక లోకతంత్రము ? ఈ విషయంపై అంటే లోక సమ్మతిని ఆదరిస్తూ ఉపజీవిక, వ్యాపారమును పరిభాషించడములో విముఖులమై మనము ప్రభుత్వముపై ఒత్తిడి తెచ్చి రాజ్యాంగములో వాంఛిత సంశోధనములు చేయవలెను దానిచే రాసాయనిక ఎరువులు, మాంసము, మద్యము మరియు తంబాకు ఆధారిక ప్రాణాంతక వ్యాపారములను ఆపవలెను.

నిజానికి మనము మాంసాహార విరుద్ధంగా మరియు శాకాహార సమర్ధనంలో ఏ ఆందోళన ప్రారంభించబోవుచున్నామో ఆ ఆందోళనము శ్రమ సాధ్యము, వ్యయసాధ్యము మరియు సమయ సాధ్యము అగను కాని ఒకవేళ దేశంలో ఉన్న ధార్మిక, సామాజిక, శైక్షిక, చికిత్సక, సర్వదయి సంస్థలు, పత్ర పత్రికలు మరియు సోషల్ మీడియా కలిసి కట్టుగా ఈ దిశలో ప్రయత్నించినట్టయితే ఈ ఆందోళన యొక్క సకారాత్మక పరిణామముల చేత మన సమాజము లేక రాష్ట్రము సహజముగా లాభాన్వితమగును. అందుకు వీతీరందరికి మా ప్రార్థన ఏమనగా ఒక సశక్త సభను ఏర్పాటు చేసి, యోజనాయుత మార్గమును స్వీకరించి ఈ ఆందోళనను సఫలము చేయండి. అనువాదకులు

: డా॥ విశ్వశ్రవాచార్య

एकाग्र करने में कभी सहायक नहीं हो सकती।

मूर्ति पूजा की दूसरी हानि यह है कि मूर्ति पूजक समझता है कि मूर्ति अर्थात् देवता अर्थात् ईश्वर केवल मन्दिर में है, मन्दिर से बाहर नहीं, अतः मन्दिर से बाहर याद न करने की उसे छुट मिल जाती है। आपने मूर्ति पूजकों को अक्सर यह कहते सुना होगा कि चलो मन्दिर में चल कर शपथ लो कि यह कार्य तुमने नहीं किया। मैं मूर्ति के सामने यह घोषणा करता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है सत्य कहा है। मन्दिर के अहाते में पाप करने में भी उसे डर नहीं लगता और जब उसे कसम उठानी होती है तो मूर्ति पर हाथ रखकर शपथ लेता है। क्योंकि अब वह यह समझने लगा है कि परमात्मा केवल मूर्ति में ही है, अन्यत्र कहीं नहीं है। बात सीधी है मूर्ति पूजक का भगवान् एक देशीय होता है, इस वास्ते जहाँ भी वह न हो वहाँ पाप करने में उसे झिझक नहीं होती। फिर मूर्ति पूजक की यह धारण कि चाहे कितना ही बुरा पाप कर लूँ मूर्ति के दर्शन करने उसका चरणामृत पीने, उस पर जल चढ़ाने, उसका प्रसाद बाँटने, उसके आगे माथा टेकने आदि से पापों के फल से छुटकारा मिल जाएगा अतः ''भैया भये कोतवाल डर काहे का'' वह जी खोलकर पाप करता है और जी खोलकर पापों की निवृत्ति भी करा लेता है। मूर्ति पूजक कहता है :-

अकाल मृत्यु हरण सर्व व्याधि विनाशनम्। विष्णु पादोकम्, पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।।

अर्थात् विष्णु का चरणामृत अकाल मृत्यु से बचाता है, सब बीमारियों को दूरकरता है और पुनर्जन्म से छुटकारा दिलाता है।

जिसके पास ऐसी संजीवनी बूटी हो वहपाप करने से भला क्यों डरे।

मूर्ति पूजक का विश्वास होता है कि भगवान् भक्ति से प्रसन्न होते हैं, गुणों से

नहीं। उन्होंने ध्रुव की आयु नहीं देखी थी। राज और ग्राह की लड़ाई में गज की रक्षा किसी विद्या के कारण नहीं की थी, दासी पुत्र विदुर की जाति नहीं देखी थी, कन्स के पिता उग्रसेन की वीरता नहीं देखी थी, सुदामा का धन नहीं देखा था, परमेश्वर गुण नहीं देखते भक्ति देखते हैं।

अपि चेत्सु दुराचारो भजते मामनन्य भाव। साधु रेव समन्तव्यः सम्यक व्यविसितो हि सि ॥

अपि चेदसि पापेभ्यः सवैभ्य पाप कृत्तमः। सर्व ज्ञान प्लवेनैव वृजिन सन्तरिष्यासि तेरा कहीं यदि पापियों से घोर पापा चार हो। इस ज्ञान नैया से सहज में पाप सागर पार हो ॥

जो अनन्य भाव से मुझे भजता है जो भक्त है यदि वह दुराचारी भी हो उसकी साधु ही जानना चाहिए इस मान्यता का परिणाम है कि लम्पट साधू संन्यासी पण्डे और पुजारी कितने ही पापी और दुराचारी होते हुए भी पूज्य माने जाते हैं और उनको भंग सुल्फा आदि साधन भी दिए जाते हैं। हमारे पड़ोस में देवी का जागरण होता था और गाने वालों का नेता उस्ताद अथवा गुरु आगे बोलने वाला शराब पीकर बोलता था, क्योंकि उसके बिना सारी रात कैसे जागे। इस पर भी लोग जानते हुए उसे देवी का भक्त मानते थे। इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति पूजक इस मान्यता के अनुसार घोड़े गधे को एक बराबर समझता है।

चारों वेदों में कहीं भी नहीं कहा गया है कि भगवान् की मूर्ति बना कर पूजनी चाहिए। मूर्ति किस चीज की बननी चाहिए सोने, चाँदी की, संगमरमर की, मिट्टी की, पीतल-ताँबे की, पत्थर की अथवा, सीमेन्ट की। और फिर कितनी बनाई जाएँ चार, आठ अथवा दस या बीस। वेद में तो स्पष्ट आता है :-

"न तस्य प्रतिमा यस्य नाम महद्यशा"

उस परमेश्वर की मूर्ति नहीं है, उसका नाम महान् यश वाला है। इससे सिद्ध होता है कि मूर्ति पूजा सर्वथा वेद विरुद्ध है और लोगों ने अपना उल्लू सीधा करने, भोले-भाले व्यक्तियों को फंसाने के लिए ढोंग चलाया था और लकीर के फकीर लोग अब भी उसी रास्ते पर चले जा रहे हैं। वास्तव में वेद विरूद्ध कर्मों का करना पाप और अधर्म है।

मूर्ति पूजा के कारण तो मन्दिर में अपार धन आता है, वह निरर्थक बन्द पड़ारहता है। करोड़ों रुपए व्यय करके मन्दिर बनवाये जाते हैं। लाखो रुपए तुलसी सालग राम की शादी में खर्च कर दिए जाते हैं जबकि देश के अनगिनत लोगों को रात में भूखा सोना पड़ा है। उनके पास तन ढापने के लिए कपड़ा नहीं है, लाखों विधवाएँ असहाय होती है। लाखों अनाथ बालक भटकते फिरते हैं, देश में निर्धनता का नंगा नाच देखने में आता है। यदि यह करोड़ों ही नहीं अरबों रुपयों की धन राशि देश के हित में लगाई जाए तो देश का बेड़ा पार हो जाए और सभी निवासियों का भी कल्याण हो सकता है।

मूर्ति पूजा से देश में बेकारी बढ़ती है, हरिद्वार में चले जाइये, हजारों पण्डे हराम की कमाई पर पलरहे हैं। भिख मंगों की संख्या बढ़ रही है। सरकार चाहते हुए भी तीर्थ स्थानों को भिख मंगों से खाली नहीं करा सकती। हज़ारों बालक, बूढ़े स्त्री-पुरुष केवल दूसरों की कमाई पर पलना अपना अधिकार समझते हैं। अकेले जगन्नाथपुरी में ऐसे स्त्री-पुरुषों, बालकों, जवानों और बूढ़ों की संख्या दस हज़ार से कम नहीं जिनका काम दूसरों को ठगकर पेट पालने के सिवाय और कुछ नहीं है। देश में अनाज की कमी है किन्तु वहाँ दो हज़ार हाँडी चावल की प्रति दिन बिकती है और इस प्रकार बीस पच्चीस मन चावल पकाकर लोगों को खिलाकर देश में बेकार लोगों की संख्या बढ़ाई जाती है। इनमें सात सौ परिवार वह हैं जिनका कार्य केवल मूर्तियों का श्रृंगार करना है, नके कपड़े बदलना है। दो हज़ार क्वांरी लड़कियाँ है जो मन्दिर में नाचती हैं औरदेव दासियों कहलाती हैं।ऐसी ही हालत अन्य बहुत से मन्दिरों में है।क्या मूर्ति पूजा से उपरोक्त हानि कुछ कम हानि है।

मूर्ति पूजा लोगों के अन्दर आलस्य, प्रमाद, निकम्मापन, भीरुता उत्पन्न करती है। अपने ऊपर भरोसा नहीं करने देती। मूर्ति पूजक समझने लगते हैं कि मूर्ति देश-विदेश के शत्रुओं से हमारी रक्षा करेगी यदि इनका बस चलेतो फौज़ों को अवकाश दे दिया जाए और विदेशियों से जो संघर्ष चल रहा है, उसे इन मूर्तियों के हवाले कर दिया जाए और सभी लोगों को आदेश दे दिए जाएँ कि वह पैर फैलाकर बेफिकरी नीन्द सो जाएँ। मूर्ति अपनी तथा हमारी रक्षा स्वयं कर लेगी। ऐसा ही सोमनाथ के मन्दिर के ऊपर महमूद गजनवी के आक्रमण के समय हुआ था। कैसा उपहास बना रखा है भगवान् का इन मूर्ति पूजकों ने। दुःख की बात है कि देश से बुद्धिमत्ता वीरता का बहिष्कार इस मूर्ति पूजाने कर दिया और घर-घर में मूढ़ता नपुँसकता का डेरा जमा दिया।

इस प्रकार से मन्दिरों में जो करोड़ों रुपयों की चढ़ावे की धन सम्पत्ति जमा हो जाती है तथा सोने, चाँदी के आभूषण, बरतन रेशमी कपड़े, शाल-दुशाले इकट्ठे हो जाते हैं। आक्रमणकारियों को आक्रमण का बुलावा देते हैं। चोरों डाकुओं के लालच का कारण बनते हैं, भूतकाल में ऐसी बहुत सी घटनाएं घटी है जो उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करती हैं। और भी अनेकों बुराइयाँ है मूर्ति पूजा की। किन्तु यहाँ इतना ही लिखना कॉफी है। देशवासी सोचे यदि आज की दुनिया में देश को ऊँचा उठाना है तो मूर्ति पूजा को छोड़ना होगा। केवल तपस्या के जीवन से ही देश की समृद्धि हो सकती है और देश शक्तिशाली बन सकता है।

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 18-01-2024 Registered-Reg. No. D/RNP/HCD-783/2024-26 RNI No. 52990 / 93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు द्विभाषा పక్ష పత్రిక

Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040-24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ.

To,

...पृ. ६ का शेष.

है, जिसमें अशान्ति, विक्षोभ और संरम्भ की तरंगें नहीं उठतीं । इन्द्रियों की स्वस्थता में भी मानव तरंगाकुल बना रहता है, तम और रज दोनों गुण उसे सतत विचलित करते रहते हैं । सत् का सम्पर्क ही उसे शान्ति की झलक दिखाने में समर्थ होता है । यह कार्य सत् के प्रथम विकार शुद्ध बुद्धि से प्रारम्भ होता है और उसकी पूर्ण प्रतीति आत्मा के अपने स्वरूप में अवस्थित होने पर होती है । आत्मा का अपना यह रूप शिव है, शान्त है, जहाँ समस्त जागति के प्रपञ्च उपशम को प्राप्त हो जाते हैं । यजुर्वेद के नीचे लिखे मन्त्र में सुख और शान्ति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हुआ भक्त प्रभु के आगे प्रणत होता हुआ कहता है :-

ओ३म् नमः सम्भवाय च, मयोभवाय च, नमः शंकराय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च ।

प्रभु ! आप सुख और शान्ति के उत्पन्न करने वाले हैं, आपको मेरा प्रणाम है । आप ही सुख और शान्ति के मूल कारण हैं आपको मेरा नमस्कार है । आप ही शान्त, शिव रूप हैं । आपसे बढ़कर यहाँ अन्य कोई भी शिव-शान्त-रूप नहीं है । आपको मेरा नमस्कार है ।

मन्त्र में प्रणति के साथ साधक का ध्यान प्रभुके दो गुणों की ओर विशेष रूप से है । वे दो गुण शम्भव और मयोभव हैं । शम्, शान्ति का और मयः सुख का नाम है । मन्त्र के प्रथम दो चरण प्रभु को शम्भव और मयोभव तथा शंकर और मयस्कर कहते हैं । सब से बाहर की अवस्था में प्रभु शान्ति और सुख के स्त्रोत स्वरूप में साधक के सम्मुख आते हैं । उसे विश्व की समस्त सुखराशि और शान्ति उन्हीं से निकलती हुई प्रतीत होती है । इसके पश्चात् दूसरी अवस्था उसके कर्तव्य की आती है । जो सुख और शान्ति का स्त्रोत है, उद्भव और जनक है, वही सुख और शान्ति का वातावरण दूसरों के लिए उत्पन्न कर सकता है । मन के वातावरण को सुख और शान्ति से सम्पन्न करने के लिए साधक इसी हेतु प्रभु के चरणों में झुकता है । जैसा पहले लिखा जा चुका है, सुख का सम्बन्ध इन्द्रिय जगत् के साथ है । इसीलिए मन्त्र के प्रथम दो चरणों

आर्य समाज नारायणपेट के अधिकारीयों ने नव निर्वाचित प्रधान प्रो. विठ्ठल राव आर्य का सम्मान किया

में शान्ति के साथ सुख का भी उल्लेख हुआ है । प्रथम चरण बाह्य इन्द्रियों की स्वस्थ अवस्था के लिए सुख और शान्ति की याचना करता है और द्वितीय चरण अन्तःकरण की स्वस्थता के लिए । इसके ऊपर की सूक्ष्म अवस्था आत्मिक जगत् की अवस्था है जहाँ तक पहुँचते पहुँचते सुख पीछे छूट जाता है, केवल शान्ति रह जाती है । मन्त्रके तीसरे चरण में मय अर्थात् सुख का उल्लेख इसी हेतु नहीं पाया जाता । वहाँ शिव और शिवतर दो शब्द आते हैं । आत्मा को इन्द्रियों के सुख के पश्चात् स्वयं शान्त स्वरूप ही बनना है और कुछ नहीं, परमात्मदेव शिव रूप है, कल्याण के केन्द्र है, वे शिवतर हैं, उनसे बढ़ कर अन्य कोई भी सत्ता कल्याणरूपिणी नहीं है, इससे अधिक कुछ भी कहना मन्त्र शक्ति का निरादर करना होगा, अतः श्रुति भगवती प्रभु को शिव तथा शिवतर कहकर ही सन्तोष कर रही है, मानव जीवन के यही प्रमुख दो लक्ष्य हैं :- सुख और शान्ति । महर्षि कणाद ने अपने वैशेषिक दर्शन में इन्हीं को अभ्युदय और निःश्रेयस् कहा है ।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.
Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.
సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర.-తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, Email : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विठ्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र.-तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Narendra Bhavan Ph : 040 24760030.